चन्दामामा
जून १९८५
२
रु०

"तुम-सा कोई और कहां!"

"ऐसी महक कहीं और कहां."

जिंदगी की खुशनुमा
यादों-सी
सदाबहार ताजगी है
जिसमें!

पॉण्ड्स

नई सुबह हुई, नई धूप जगी
नया सनलाइट
डिटर्जेंट पाउडर
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक जगाए!
आप भी अपने घर में सनलाइट की जगमगर ले आइए. नया सनलाइट डिटर्जेंट पाउडर वज़न में एकदम हल्का है, लेकिन असर में कहीं ज़्यादा है. क़ीमती पाउडरों जैसा कारगर, पर फिर भी बहुत किफ़ायती!
सनलाइट में एक ख़ास पदार्थ है, जो साधारण पाउडरों में नहीं. यह कपड़ों की रग रग से मैल निकाल कर उनमें कुदरती चमक दमक ले आता है. सनलाइट से न हाथों को तकलीफ़, न कपड़ों को नुकसान और इसकी खुशबू ऐसी ताज़ा भीनी भीनी है, जो आपके कपड़ों को भा जाएगी. आप भी सनलाइट की चमक दमक अपने जीवन में ले आइए.
एक बार आज़मा कर तो देखिए–सिर्फ़ रु.६.३५ में.
सिर्फ़
रु. ६.३५*
*(स्थानीय कर अतिरिक्त)
Double Power
SUNLIGHT
DETERGENT POWDER
For a brighter wash
आपके कपड़ों में धूप सी चमक दमक का वादा
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन
OBM/2568 Hin
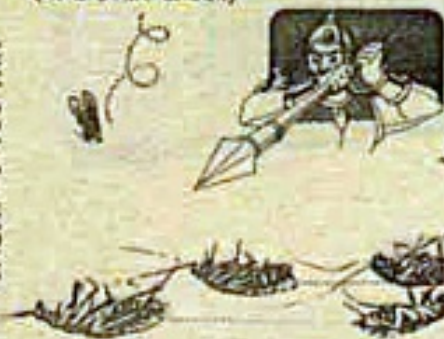
चन्दामामा

संस्थापकः 'चक्रपाणी' संचालकः नागिरेड्डी

इस समाज में कुछ विचित्र लोग भी होते हैं। वे लोग आर्थिक दृष्टि से तो सम्पन्न होते ही हैं, पर साथ ही कुछ ललित कलाओं में भी उन्हें दक्षता प्राप्त रहती है। धन और ललित कलाओं का ज्ञान-इन दोनों कारणों से उनके अन्दर इस बात का अहंकार पनपने लगता है कि किसी भी बात में उनकी समता करनेवाला कोई दूसरा व्यक्ति नहीं है। लेकिन ऐसे व्यक्ति को कभी न कभी अपमान का शिकार होना पड़ता है। कैसे ? यह आप पढ़ेंगे 'सम्मान की योग्यता' शीर्षक कहानी में !

अमर वाणी

निश्शंकं दीयते येन, न दाता क्षुन्निवारिणी ।
सुधा स्यात् धैर्यवान यस्तु, न एव पुरुषोत्तमः ॥

[शंकारहित होकर देनेवाला मनुष्य दाता है। भूख मिटाने वाली वस्तु अमृत है। जो धैर्यवान है, वह उत्तम पुरुष है।]

वर्षः ३७ जून १९८५ अंकः १०

एक प्रतिः २-०० :: वार्षिक चन्दाः २४-००

सम्मान की योग्यत

प्रताप एक ऐसा युवक था, जो स्वयं तो कलाकार नहीं था, पर कुछ कलाकारों को निमंत्रित करके उनकी कलाओं का प्रदर्शन करवाया करता था। इन प्रदर्शनों से जो धन वसूल होता, उसमें वह अपना हिस्सा अवश्य रखता था। इस तरह उसने काफ़ी धन कमाया।

एक बार प्रताप अपने साथ एक गायक को लेकर चन्दनपुर गया। वहाँ उस गायक के संगीत-समारोह में बहुत धन प्राप्त हुआ। जब समारोह समाप्त हो गया तो चन्दनपुर के एक प्रतिष्ठित व्यक्ति शीतला प्रसाद ने उसे गायक सहित अपने यहाँ निमंत्रित किया।

शीतलाप्रसाद ने गायक एवं प्रताप को स्वर्ण पदक दिया और ऐसा अद्भुत संगीत सुनाने वाले गायक तथा उस गायक का परिचय कराने वाले प्रताप के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा, "मैं आप दोनों की बस इतनी ही सेवा कर सकता हूँ!" प्रताप ने कुछ विस्मित होकर कहा, "हम लोग तो अपनी आजीविका के लिए ही यह काम करते हैं। इसमें हमारा अभिनन्दन करने जैसी बात ही क्या है?"

"भले ही आप लोग अपनी आजीविका के लिए कला का प्रदर्शन करते-करवाते हों, फिर भी कला को उसका महत्व तो देना ही होगा। एक कलाकार को आपकी तरह का सम्मान करने का सौभाग्य तो मैं पा सकता हूँ।" शीतलप्रसाद ने कुछ नम्र होकर कहा।

इसके बाद प्रताप किसी भी कलाकार की कला के प्रदर्शन का आयोजन करता, तो उसे चन्दनपुर अवश्य ले जाता। इस तरह वह एक शिल्पी, एक चित्रकार, एक कवि और एक मल्लयोद्धा को भी चन्दनपुर ले गया। वहाँ उन्होंने अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करके शीतलाप्रसाद के हाथों से स्वर्णपदक प्राप्त किये।

प्रताप को शीतलाप्रसाद के इस व्यवहार से कुछ आश्चर्य होता था। कभी उसके अन्दर क्षण

कलाकारों का सम्मान किया, तब किसी ने भी आपसे प्रश्न नहीं किया। सम्मान करने की आपकी योग्यता के बारे में भी किसी ने कुछ नहीं पूछा। इसीतरह अगर कोई आपका सम्मान करना चाहता है तो आपको उसकी योग्यता की बात उठाना न्याय-संगत नहीं !"

शीतलाप्रसाद दर्पभरी हँसी हँसकर बोला, "मुझमें सभी प्रकार के कलाकारों का सम्मान करने की योग्यता है। पर मेरा सम्मान करने की योग्यता किसी में नहीं है।"

प्रताप चुप रहा। शीतलाप्रसाद कुछ देर बाद बोला, "पास के ही नगर में एक वीणावादक आये हुए हैं। नाम है वामनमूर्ति। मैं उन्हें निमंत्रित करके उनका सम्मान करना चाहता हूँ। अगर आपकी इच्छा हो तो आप भी मेरे साथ चलें !"

शीतलाप्रसाद के साथ प्रताप भी वीणावादक वामन मूर्ति से मिलने गया। शीतलाप्रसाद ने विनम्र शब्दों में वीणावादक से अपनी इच्छा प्रकट की। सुनकर वामन मूर्ति ने उसे नख से शिख तक देखा और कहा, "आप ! आप मेरा सम्मान करेंगे ? संगीत कला में ? यह तो बड़े आश्चर्य की बात है ! वीणावादन के बारे में आपका ज्ञान ही क्या है ? मेरा सम्मान करने के लिए आपकी योग्यता क्या है ?"

शीतलाप्रसाद क्षण भर के लिए अवाक् रह गया। उसने अपना सिर झुकाया और वहाँ से चल पड़ा। प्रताप ने उसका अनुसरण किया। रास्ते में प्रताप ने शीतलाप्रसाद से कहा, "मैं नहीं कह सकता कि आज आप जैसे एक और व्यक्ति के दर्शन पाकर मुझे अपना सौभाग्य मानना चाहिए या दुर्भाग्य। लेकिन इतना स्पष्ट हो गया कि आप भले ही असाधारण प्रतिभा के धनी हों, लेकिन अपने अहंकार के कारण आप दूसरों का सम्मान करने की योग्यता के अधिकारी नहीं हैं। और जिसमें यह योग्यता न हो, उसका सम्मान करने की बात सोचना मेरी मूर्खता है।"

इसके बाद प्रताप फिर कभी शीतलाप्रसाद से नहीं मिला।

काँसे का क़िला

७

[चंद्रवर्मा नदी की धारा में बहकर किसी जंगल के किनारे आ लगा। थोड़ी देर बाद होश में आने पर वह उस जंगल के बीच चल पड़ा। उसे पेड़ों की शाखाओं से चीख-चिल्लाहटों की आवाज़ें आने लगीं। इसके बाद चंद्रवर्मा कापालिनी नाम की एक जादूगरनी के भवन में पहुँचा। उस कापालिनी ने चंद्रवर्मा को काँच के एक गोलक में वीरपुर का हाल तथा सेनापति धीरमल्ल का शत्रुओं के बीच घिर जाना दिखाया। इसके बाद पढ़िये...]

चंद्रवर्मा को दुखी देख कापालिनी ने उसके कंधे पर हाथ रखा और समझाया, "बेटा चंद्रवर्मा ! घबराओ मत ! विपदा सदा केलिए नहीं रहती। तुम अपने राज्य को फिर जीत सकते हो ! अगर तुम अपने वचन को निभाकर मेरी सहायता करोगे, तो मैं हर तरह से तुम्हारी मदद करूँगी। तुम विश्वास करो। मेरी तरफ़ से कभी तुम्हारा अहित न होगा। यक़ीन करो, साहसी पुरुष केलिए इस संसार में कोई असंभव कार्य नहीं है ! वह विपदाओं से कभी नहीं डरता साथ ही प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझने केलिए सदा सन्नद्ध रहता है !"

कापालिनी की बातों से चंद्रवर्मा को कोई उत्साह महसूस नहीं हुआ। सौ योजन दूर रहनेवाले मांत्रिक शंखु के भवन में प्रवेश करके उसे कापालिनी के लिए कोई वस्तु लानी है। न मालूम उसे वहाँ पर किन स्थितियों का सामना करना पड़ेगा ! मांत्रिक लोग अनेक मंत्र-तंत्र व

जाने केलिए तैयार नहीं है तो बोलो, क्या कहते हो ?"

यह बात सुनकर कि वह कापालिनी के यहाँ से बेरोक-टोक जा सकता है, चंद्रवर्मा एक दूसरी चिन्ता में डूब गया। वह यहाँ से कहाँ जा सकता है ? कौनसा स्थान शेष है उसके लिए ? यही उसके सामने सवाल था। जंगलों और पहाड़ों में अकेले भटकते रहने के अलावा और कौन सा रास्ता है ? उसके पिता का स्वर्गवास होगया है। राज्य शत्रु के हाथ में चला गया है। विश्वासपात्र सेवक एवं मित्र सुबाहु का कोई पता नहीं ! ऐसी हालत में वह अकेला अपने राज्य में जाकर क्या कर सकता है ? शत्रु क्या उसे प्राणों से छोड़ देगा ! वहाँ पर कोई सुरक्षा नहीं है। इस लिए थोड़े दिन अपने राज्य से बाहर रहने में ही उस की ख़ैरियत है। फिर वह अनुकूल परिस्थिति पाकर अपने राज्य पर अधिकार करने का प्रयत्न कर सकता है ! ठण्डे दिल से सोच-समझ कर निश्चिन्त हो कोई मार्ग निकाल सकता है। ऐसा न होकर आवेश के वशीभूत हो अपने राज्य के अन्दर प्रवेश करना बुद्धिमानी का काम नहीं है ! इस प्रकार चंद्रवर्मा गहरी सोच में पड़ गया।

अचानक चंद्रवर्मा के विचारों की श्रृंखला टूटी। उसने मन ही मन कोई निर्णय लिया और कुछ उत्साह में आकर कहा, "कापालिनी ! मैं तुम्हारी मदद करने में अपनी सारी ताक़त लगा दूँगा। मैं उसकी खोज में जाने केलिए तैयार हूँ।

जादू-टोने का प्रयोग करके उनके शत्रुओं का सर्वनाश कर बैठते हैं इस प्रयत्न में सफल होकर यदि वह ज़िन्दा लौट आया, तभी कापालिनी की मदद उसके लिए उपयोगी सिद्ध होगी। और अगर वह मृत्यु को प्राप्त हो जाता है तो फिर...

चंद्रवर्मा के विचार को भाँपकर कापालिनी ने गहरी साँस ली। फिर क्षण भर ठहर कुछ हँसकर बोली, "बेटा चंद्रवर्मा ! तुम्हारे मन की बात मैं समझ रही हूँ। यदि तुम इसी वक्त यहाँ से जाना चाहते हो तो खुशी से जा सकते हो। मैं तुम्हें रोकूँगी नहीं। मैं तुम्हें आश्वासन देती हूँ कि कालनाग तथा जंगल के ये पेड़-पौधे तुम्हारा कोई नुक़सान नहीं करेंगे ! इस में कोई जोर-ज़बर्दस्ती नहीं, अगर तुम्हारा मन वहाँ पर

बताओ ! जादूगर शंखु के यहाँ से मुझे कौनसी चीज़ लानी है ?''

चंद्रवर्मा का निर्णय सुनते ही कापालिनी का चेहरा खिल उठा । वह अपने आसन से उठ खड़ी हुई और दीवार की बगल में रखे एक लकड़ी के खिलौने पर मानव की हड्डी से प्रहार करके बोली, ''भैरव ! मेरे घर अतिथि आया हुआ है ! तुम उस के वास्ते जल्दी जल्दी खाना परोसो !''

दूसरे ही क्षण 'हुमम्' की आवाज़ करता हुआ एक भीमकाय व्यक्ति प्रकट हुआ । उसने कहा, ''लो, यह रहा दावत का भोजन !'' और अनेक प्रकार के मिष्ठान्न एवं स्वादिष्ट व्यजनों से भरा एक सोने का थाल चंद्रवर्मा के सामने रख दिया ।

चंद्रवर्मा को भूख तो लगी हुई थी ही । वह जल्दी-जल्दी खाना खाने लगा । उसके एक तरफ़ भैरव खड़ा था और दूसरी तरफ़ कापालिनी उसे संतुष्ट भाव से निहारती हुई खड़ी थी । चंद्रवर्मा ने भरपेट भोजन किया और थाली को एक ओर को खिसका दिया । भैरव हाथ-मुँह धोने के लिए झारी में जल ले आया ।

चंद्रवर्मा फिर सोच-विचार में पड़ गया । कापालिनी ने कालनाग तथा भैरव जैसी भयंकर शक्तियों को अपने वश में कर रखा है । इनकी सहायता से वह जादूगर शंखू के यहाँ से उस आवश्यक वस्तु को क्यों नहीं मँगवा लेती ? क्या जादूगरों के लिए भी असंभव कोई कार्य हो सकता है । मैं तो एक साधारण मानव हूँ ! इस वक्त तो न मेरे पास सेना है और न मेरा कोई सहायक ! मेरे अन्दर क्या इनसे भी बढ़कर कोई शक्ति है ? इसमें कहीं कोई भ्रम, या कोई षडयंत्र तो नहीं है न !

तभी कापालिनी ने उसका विचार-क्रम तोड़ दिया और बोली, ''बेटा चंद्रवर्मा ! अब असली बात सुनो ! शंखु के मंत्रगृह में अपूर्व शक्तियों वाला एक शंख है । उस शंख में एक ख़ास जड़ी-बूटी का पका हुआ गरम काढ़ा डालकर पीने से बुढ़ापा नष्ट हो जायेगा और यौवन प्राप्त होगा । वह यौवन एक हज़ार वर्ष तक क़ायम रहेगा । आज से एक हज़ार पचास साल पहले मैंने उसका सेवन किया था । उस वक्त मांत्रिक

शंखु मेरा मित्र था। इसके बाद वह मेरा परम शत्रु बन बैठा।"

इतना कहकर कापालिनी ने चेहरा घुमाया और थोड़ी दूर खड़े भैरव की ओर आँखें तरेर कर बोली, "अरे दुष्ट! तूने अपनी दुष्ट बुद्धि नहीं छोड़ी!" और उसके सिर पर मानव की हड्डी से प्रहार किया।

भैरव जोर से कराह उठा और धम्म् से लुढ़क कर दीवार के पास गिर गया।

"यह तो तुम्हारा सेवक है न! इस पर तुमने इतनी ज़ोर से प्रहार क्यों किया ?" चंद्रवर्मा ने पूछा।

कापालिनी ज़ोर से अट्टहास कर उठी और बोली, "यह सच है कि यह मेरा सेवक है। पर मौक़ा मिलते ही यह मेरे रहस्य जानकर मेरा अंत करने की कोशिश करेगा और शंखु के पास भाग जायेगा।

यह बड़ा दुष्ट है। दरअसल इन क्षुद्र भूतों का मामला ही कुछ ऐसा है। ये जिन मांत्रिकों की सेवा करते हैं, अगर कोई उनसे भी अधिक बलवान दिखाई देता है तो उनके आश्रय में जाने की ताक़ लगाये रहते हैं। इसीलिए मैं इसे लकड़ी का टुकड़ा बनाकर रखती हूँ।

जादूगर शंखु ने मेरे रहस्यों का पता लगाने के लिए कई लोगों को भेजा। उनकी कैसी दुर्गति हुई, तुम स्वयं अपनी आँखों से देख लो!" कहकर कापालिनी ने द्वार पर तोरण की तरह लटकी कपाल-माला की ओर संकेत किया।
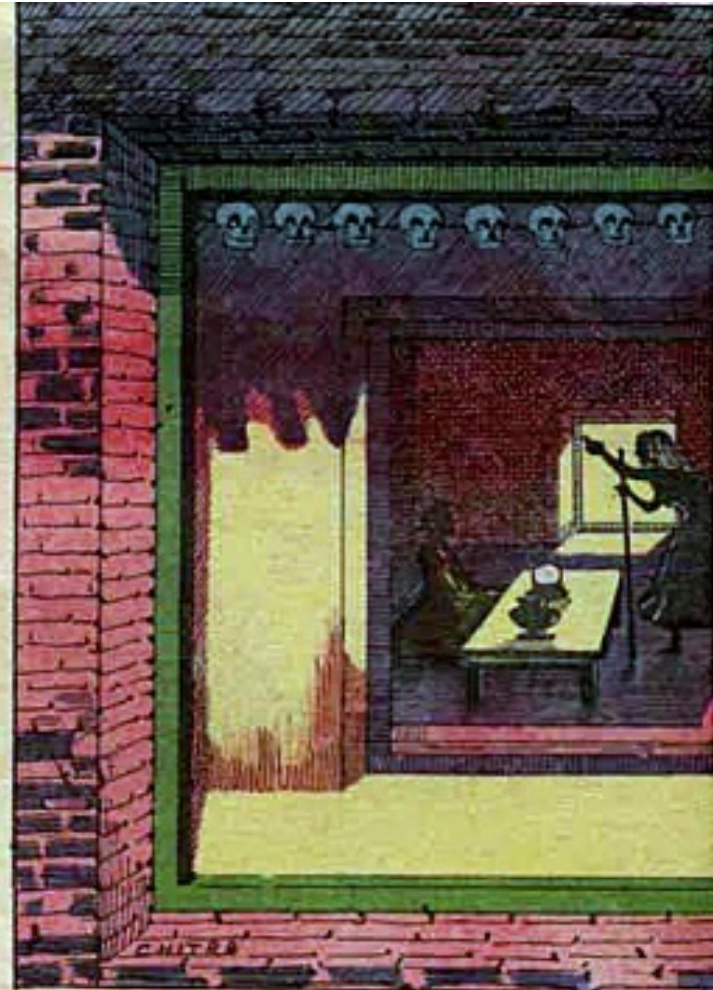
कपालों के उस तोरण को देखते ही चंद्रवर्मा सिर से पैर तक काँप उठा। उस समय तक चंद्रवर्मा की निगाह उस पर न पड़ी थी। शंखु ने जिन दूतों को भेजा, वे कापालिनी के हाथों ख़त्म होकर तोरण बन गये हैं। इसी तरह कापालिनी के द्वारा भेजे गये दूत भी शंखु द्वारा खत्म होकर उसके गले का हार बन गये होंगे।

इस विचार के आते ही चंद्रवर्मा ने शंकित होकर पूछा, "कापालिनी! तुमने जो दूत भेजे होंगे, उनके कपालों का भी शंखु ने इसी प्रकार उपयोग किया होगा ?"

कापालिनी ने इनकार में सिर हिलाकर कहा, "मैंने आज तक किसी को उसके पास नहीं भेजा। अपूर्व शक्तियोंवाले उस शंख को वहाँ

से चुराकर लाने में कौन व्यक्ति समर्थ है, यह मैं अच्छी तरह जानती हूँ। मैं असमर्थ व्यक्तियों को शंखु के पास भेज कर उन के प्राणों की बलि चढ़ाना पसंद नहीं करती हूँ। इस से मेरा कार्य भी संपन्न न होगा, दूसरे अकारण ही निरीह लोगों के प्राणों की आहुति होगी ! इसीलिए तो मैं आज तक तुम्हारी प्रतीक्षा करती रही। मेरी पूरी उम्मीद है कि तुम इस कार्य में निश्चय ही सफल होकर लौट आओगे !"

"वह समर्थ व्यक्ति मैं हूँ, यही तुम्हारा विश्वास है न !" चंद्रवर्मा ने विस्मयपूर्वक पूछा।

"हाँ, हाँ, चंद्रवर्मा !" कापालिनी ने उत्साह पूर्वक कहा। "तुम युवक हो, साथ ही क्षत्रिय भी हो ! तिस पर अपने राज्य, बन्धु-मित्र आदि सबसे वंचित और एकाकी हो। तुमसे बढ़कर साहसी मुझे और कौन मिल सकता है ? इस प्रयत्न में अगर तुम सफल हुए तो तुम न केवल राजा बनोगे, बल्कि सारे देश का चक्रवर्ती-पद पाओगे। वह कैसे होगा, यह मैं तुम्हें तुम्हारे हाथ से शंख पाने के बाद बता दूँगी।" कापालिनी ने स्पष्ट किया।

कापालिनी की बातों ने चंद्रवर्मा के मन में उत्साह भर दिया। लेकिन अब भी उसके हृदय के किसी कोने में थोड़ा सा सन्देह बाकी था। क्या उस शंख को हासिल करने के लिए कापालिनी उसे प्रलोभन नहीं दे रही ?

पर चंद्रवर्मा ने अपने को संयमित किया और हृदय में त्याग की भावना रखकर कापालिनी से कहा, "उस मांत्रिक के पास पहुँचने का मार्ग क्या है ? मुझे बताओ ! मैं अभी अपनी यात्रा शुरू करता हूँ।"

कापालिनी अपने उस टूटे भवन से बाहर आयी। चंद्रवर्मा भी उसके पीछे-पीछे बाहर निकला। सूर्य अस्ताचल की तरफ़ खिसक रहा था। कापालिनी ने उत्तर दिशा की तरफ़ अपना मुँह किया और उंगली से संकेत कर बोली, "इस दिशा में सौ योजन की दूरी पर शंखु मांत्रिक का पर्वत है। उसी पर उस का मंत्रगृह बना है। उस गृह के पूजाकक्ष में शंख एक नाग के कंठ में लटक रहा होगा और वह नाग दीवार पर एक खूँटे से लटक रहा होगा। तुम्हें शंखु से प्रेम का प्रदर्शन करके, उसे दग़ा देकर, या उसका वध करके ही वह शंख हासिल करना

होगा !"

इतने बड़े मांत्रिक का वध करना क्या मेरेलिए संभव है ?" चंद्रवर्मा ने शंकित होकर कहा ।

"क्यों नहीं ? कितना भी बड़ा मांत्रिक क्यों न हो, उसे भी एक न एक दिन मरना है। शंखु इस बात का अपवाद नहीं है। उसका वध कैसे संभव है, वह उपाय तुम्हें खुद प्रयत्न करके जानना होगा !" कापालिनी ने कहा ।

"अच्छी बात है। अब मैं चलता हूँ !" कह कर चंद्रवर्मा ने अपने वस्त्रों और म्यान की तलवार पर एक दृष्टि डाली और चलने को उद्यत हुआ ।

चंद्रवर्मा ने अभी दो-तीन क़दम ही आगे बढ़ाये होंगे कि कापालिनी बड़ी आतुरता से उसके सामने आयी और उसका कंधा पकड़कर रोकते हुए बोली, "बेटा चंद्रवर्मा ! मैं तुम्हें एक ख़ास बात बताना तो भूल ही गयी। शंखु के पास एक विचित्र प्रकार का पक्षी है। उस की शक्ति और गति का वर्णन नहीं किया जा सकता। उसका नाम 'अग्नि पक्षी' है। वह हर शाम सूर्यास्त के समय अपने आहार की खोज में निकलता है और आधी रात को मांत्रिक के भवन में लौट आता है। आकाश में उड़ते समय वह विशाल अग्नि ज्वाला की तरह प्रकाशित होता है। उसकी रोशनी का आधार लेकर तुम रास्ता भटके बिना निश्चित रूप से शंखु के भवन में पहुँच सकते हो। तुम्हारे आने-जाने के मार्ग की दूरी दो-सौ योजन है। तुम कितनी अवधि में यह कार्य सम्पन्न कर लौट आओगे ?"
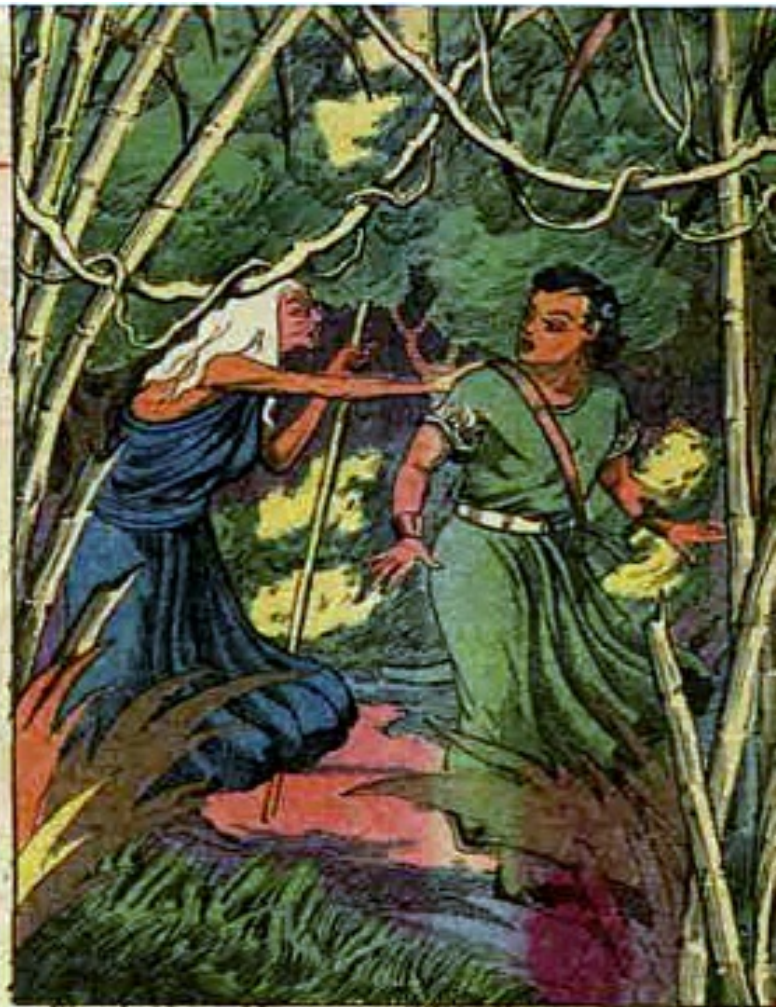
कापालिनी का प्रश्न चंद्रवर्मा को अजीब-सा लगा। जंगली और पहाड़ी दुर्गम रास्तों पर उसे सौ योजन पैदल चल कर शंखु के मंत्रगृह तक पहुँचना है। फिर महामांत्रिक शंखु पर विजय प्राप्त कर शंख हस्तगत करना है। इसके बाद पुनः उन्हीं दुर्गम रास्तों से सौ योजन पैदल चलकर वापस आना है। मार्ग में किन-किन मुसीबतों का सामना करना होगा, यह भगवान ही जानता है। ऐसी हालत में वह कैसे बताये कि किस अवधि के अन्दर वह वापस आ सकता है !

चंद्रवर्मा के असमंजस को भाँप कर कापालिनी घबरा कर बोली, "बेटा ! मैं जो यह

दुस्साहस करने जा रही हूँ, उससे मैं भलीभाँति परिचित हूँ। पर अगर आज से एक साल की अवधि के अन्दर तुमने वह शंख लाकर मुझे दे दिया, तभी उसका प्रयोजन है। इस अवधि के एक दिन बाद भी मिला वह शंख मेरे किसी उपयोग का नहीं होगा। एक बात और सुन लो

अगर तुम किसी कारणवश एक साल के अन्दर न लौटे तो मैं यहाँ नहीं रहूँगी। पर मैंने तुम्हारी मदद करने का आश्वासन दिया है, उसे मैं कभी नहीं भूलूँगी। जिस मेज़ पर काँच का गोलक रखा है, उसकी दराज में मैं एक ताड़पत्र छोड़ जाऊँगी। उसमें इस बात का पूरा विवरण लिखा होगा कि शंख का उपयोग कैसे करना है!"

कापालिनी के इस आश्वासन से चंद्रवर्मा का बचा हुआ सन्देह भी मिट गया। उसे पूरा विश्वास होगया कि कापालिनी उसे धोखा नहीं दे रही है। चंद्रवर्मा ने बड़े प्रेम और आदर से कापालिनी के दोनों हाथ अपने हाथ में ले लिये और दृढ़ स्वर में कहा, "कापालिनी। मैं निश्चित ही एक साल के अन्दर शंख लेकर लौट आऊँगा।" और वह आगे बढ़ा।

उसी वक्त कापालिनी ने जोर से पुकारा, "कालनाग!" दूसरे ही पल में सर्प फूत्कार करता हुआ उसके पास आगया। कापालिनी ने चंद्रवर्मा को दिखाकर नाग को आदेश दिया, "इन्हें वन की सीमा पार करने तक सुरक्षित पहुँचा दो।"

कालनाग एक ही छलांग में चंद्रवर्मा के सामने खड़ा होगया और उसे रास्ता दिखाता हुआ आगे बढ़ने लगा। चंद्रवर्मा ने कुछ दूर चलने के बाद पीछे मुड़कर देखा, कापालिनी और उस भवन का कहीं पता नहीं था। वहाँ उसे बाज का सर, पंख तथा सिंह की आकृति वाला वही विकृत रूप दिखाई दिया।

(क्रमशः)

दयालु दयानिधि

प्रकृति ने अत्यन्त भयानक रूप धारण कर रखा था। आंधी वर्षा का प्रकोप था। घना अन्धकार छाया हुआ था। आँखें फाड़-फाड़कर देखने पर भी कुछ दिखाई न दे रहा था। उस हालत में विक्रमार्क अपने कंधे पर शव डाले सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगे। तब शव में स्थित बेताल ने कहा, "राजन्! आपके अन्दर जो दया की भावना है, उससे प्रेरित होकर आपने किसी विशेष कार्य को करने का वचन दिया होगा। वचन भंग न हो जाये, इस भय से आप इस भयानक श्मशान में अनेक प्रकार की यातनाएं झेल रहे हैं— ऐसी शंका मेरे मन में होती है। मानव में जो अनेक उत्तम गुण हैं, उनमें दया की भावना सर्वोत्तम है। पर विवेक के साथ अगर इसका उपयोग न किया जाये, तो वह अनेक अनर्थों का कारण बन जाती है। इसके प्रमाण के लिए मैं आपको दयानिधि नाम के एक दयालु धनवान की

बेताल कथा

कहानी सुनाता हूं, श्रम को भुलाने के लिए सुनिये !"

बेताल ने कहानी सुनाना आरम्भ किया:

किसी गांव में दयानिधि नाम का एक धनवान रहता था। वह अपने नाम के अनुरूप ही अत्यन्त दयालु था। अगर कोई उसका अहित भी करता तो वह उसे उसी समय क्षमा कर देता था। इतना ही नहीं, बल्कि किसी के अपराध पर वह गहरायी से सोच-विचार करता और अपराधी को बड़ी हार्दिकता से फिर से अपराध न करने की सीख देता, लेकिन उसे कभी दण्ड नहीं देता था।

इसी दयानिधि के घर में रामू नाम का एक नौकर था। वह बचपन से दयानिधि के घर में ही पला था, इसलिए अन्य नौकरों की अपेक्षा रामू के प्रति दयानिधि के मन में कुछ विशेष सहानुभूति थी।

कुछ वर्ष बाद रामू की शादी हुई। रामू सदा अपनी पत्नी को दयानिधि की उदारता और बड़प्पन की कहानियां सुनाता और उन सब उपकारों का सविस्तार वर्णन करता, जो उसके मालिक ने उसके साथ किये थे।

रामू की पत्नी लालची थी। एक दिन वह रामू से बोली, "तुम अपने मालिक की उदारता का बखान करते नहीं थकते। पर यह भी कोई उदारता है ! उनकी पत्नी और बेटी के पास दर्जनों रेशमी साड़ियां हैं, कितने ही गहने हैं। मेरे पास एक भी रेशमी साड़ी नहीं, बदन पर नाम के लिए भी एक गहना नहीं। क्या तुमने कभी यह भी सोचा ?"

रामू को अपनी पत्नी की बात सच्ची प्रतीत हुई। पर उसने अपने मालिक से कभी किसी चीज़ की याचना नहीं की थी। दयानिधि स्वयं ही उसकी आवश्यकताओं का ख्याल रखता था और समय पर वह कुछ न कुछ देता रहता था।

रामू ने अपने साथी कर्मचाररियों से एक दिन अपनी पत्नी के मन की बात कह दी। उन लोगों ने उसे समझाया, "हर आदमी की कमाई उसकी बुद्धि और चातुरी पर निर्भर करती है। हमारे मालिक जैसे लोग अगर धनी-सम्पन्न बने रहें तो हमारे दिन भी आराम से कट जायेंगे। इनके यहां हम जितना काम करते हैं, दूसरे घर करने

पर आधी तनख्वाह भी हमें नहीं मिलेगी। और हाँ रामू ! यह बात मत भूलो, हमारे मालिक तुम्हारे साथ तो सबसे ही ज्यादा सहानुभूति रखते हैं ।"

रामू को अपने साथियों की बात भी सच्ची लगी। उसने इनकी बातें अपनी पत्नी को कह सुनायीं ।

"इसका मतलब है कि तुम यहां जितने दिन काम करोगे, इसी तंग हालत में अपने दिन गुज़ारोगे ! तुम भी क्यों नहीं अपने मालिक की तरह कोई निजी धंधा कर लेते, क्यों नहीं धनी बन जाते ?" रामू की पत्नी ने उसे सलाह दी।

"मेरे अन्दर इतनी बुद्धि नहीं है !" रामू बोला ।

"तब चोरी करो !" रामू की पत्नी ने खीज कर कहा ।

चोरी का नाम सुनते ही रामू डर गया। उसकी समझ में नहीं आया कि चोरी क्यों करे, कैसे करे, कहाँ करे ?

"और कहां ! तुम अपने मालिक के घर में ही चोरी करो। वे तुम पर बहुत अधिक विश्वास करते हैं। तुम आसानी से चोरी कर सकते हो, किसी को पता तक न चलेगा। किसी क़ीमती चीज़ को हड़प कर ले आओ। उस धन को लेकर हम कहीं दूर चले जायेंगे। तुम कोई व्यापार कर लेना। धीरे-धीरे हमारे पास भी खूब धन जमा हो जायेगा। मेरे शरीर पर रेशमी कपड़े होंगे, बहुत से गहने होंगे।" रामू की पत्नी ने

कहा ।

रामू ने पहले तो पत्नी की बात नहीं मानी, पर उसे रात दिन इसी बात की कलह करती देख उसने हामी भर ली ।

एक दिन रामू ने अपने मालिक के सारे घर का चक्कर लगाया। उसने देखा, एक कमरे में तिजोरी खुली पड़ी है। उसने इधर-उधर नज़र दौड़ायी। आस पास कहीं कोई नहीं था। उसने तिजोरी में हाथ डाला, धन की थैली उठायी और घर लेजाकर अपनी पत्नी के हाथ में थमा दी ।

रामू की पत्नी ने सारे सिक्के गिनकर खुशी से कहा, "वाह ! कितना धन है ! मैं ने नहीं सोचा था कि एक साथ इतना सारा धन हमारे हाथ

लगेगा ।"

दूसरे दिन दयानिधि को पैसा चोरी जाने का पता लग गया । उसने उदास होकर मन ही मन सोचा, 'यह काम चोर-डाकुओं का नहीं है' और खिन्न भाव से सारे नौकरों-चाकरों को इकट्ठा कर चोरी के बारे में बताया । फिर कहा, "तुम लोगों में से ही किसी ने मेरी तिजोरी में से सिक्कों की थैली चुरायी है । आज तक तुम सबने मेरे यहाँ ईमानदारी से काम किया, लेकिन आज कोई ईमान छोड़ चोरी करने के लिए उद्यत हुआ है, तो इसमें मेरा ही दोष है ।" कहते हुए दयानिधि का गला भर आया ।

धन चोरी होने पर क्रोध करने के बजाय मालिक ने अपना ही दोष स्वीकार किया, इस बात से सब नौकरों की श्रद्धा दूनी होगयी । वे मालिक को दुखी देख कर चोरी करने वाले के प्रति क्रोध से भर उठे ।

उनमें से एक नौकर से रहा नहीं गया । वह बोला, "मालिक ! आप हमें अनुमति दीजिए । हममें से दो लोग सब नौकरों के घरों की तलाशी लेते हैं । तब तक बाक़ी सारे नौकर यहीं पर रहेंगे ।"

दयानिधि ने स्वीकृति दी । सब नौकरों के घरों की तलाशी ली गयी तो सारा धन रामू के घर में बरामद हुआ । रामू डर के मारे थर-थर कांप उठा कि नमालूम उसकी कैसी दुर्गति होने वाली है ।

"रामू ! तुम जो भी चाहते थे, मैं देता रहा । ऐसी हालत में तुमने मेरे घर में चोरी क्यों की ? क्या मेरी तरफ़ से तुम्हारे लिए कोई कभी हुई ?
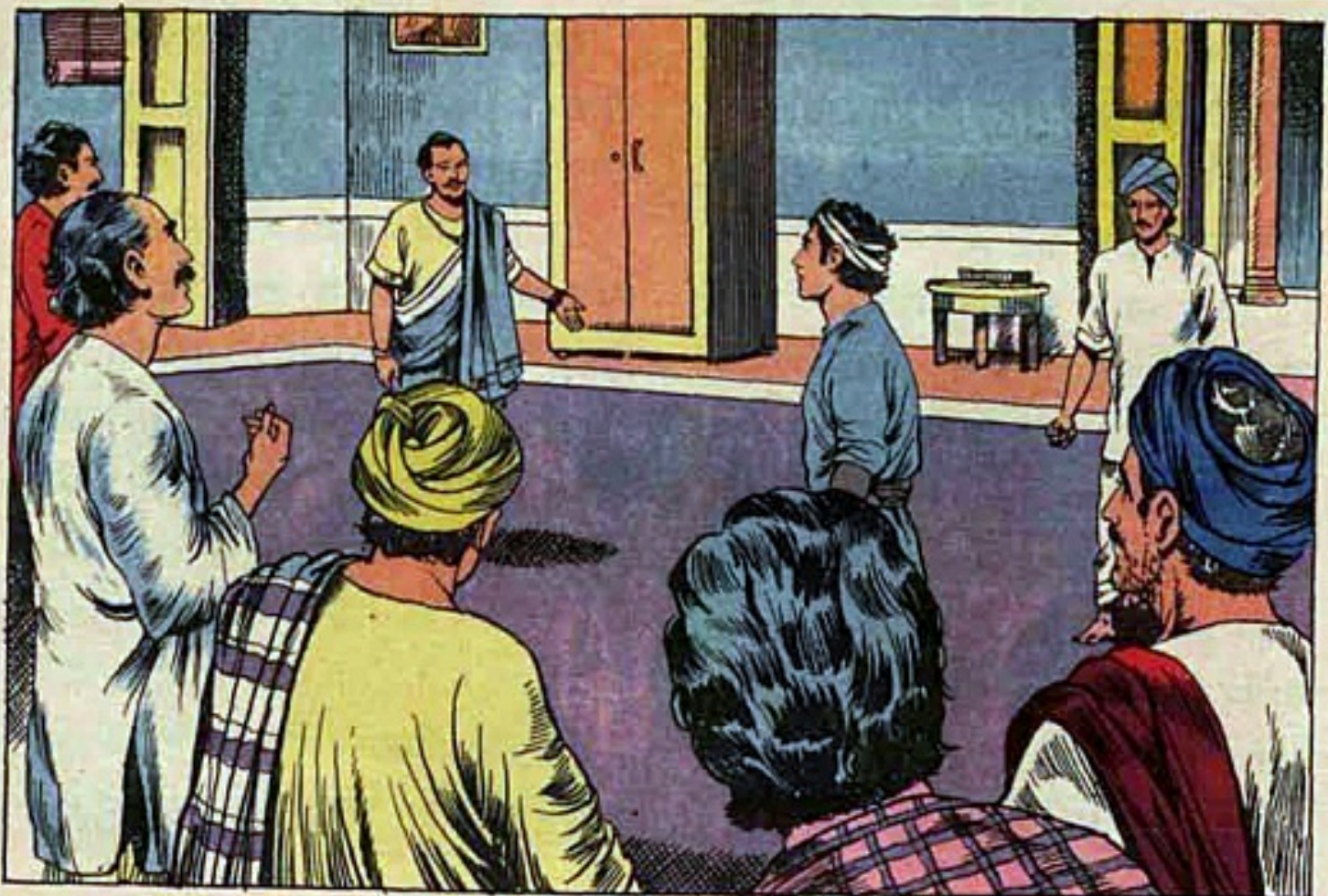
बोलो तो सही !" दयानिधि ने व्यथित होकर पूछा ।

रामू दयानिधि के पैरों पर गिर पड़ा । दयानिधि ने उसके अपराध को क्षमा कर दिया और कहा, "आइन्दा तुम ऐसा काम कभी मत करना ।"

रामू ने इस घटना के बाद कभी अपने मालिक के घर में चोरी नहीं की । पर वहाँ उसका जीना दूभर होगया । एक ओर ज्यादा धन कमाने के लिए उसकी पत्नी उसे खूब तंग करती, दूसरी ओर उसके साथी 'चोर' 'उचक्का' कह कर उसका अपमान करते ।

एक दिन रामू ने देखा, मालिक एकान्त में बैठे हैं । वह पास जाकर बोला, "सेठ जी ! सब मुझे 'चोर-चोर' कहकर अपमानित करते हैं । मैं कहीं दूर जाना चाहता हूँ । आप आज्ञा दें !"

दयानिधि ने उसे समझाया कि वह दूसरे नौकरों को आगे कभी ऐसा न करने के लिए कहेगा । उसने उसकी पत्नी के लिए एक नयी रेशमी साड़ी भी दी । और भी अनेक तरह से उसे आश्वासन दिया और कहा, "देखो, रामू ! तुम बचपन से मेरे घर पले हो । तुम्हारे लिए मेरे दिल में बड़ी सहानुभूति है । तुम कहीं और जाओगे तो तकलीफ़ उठाओगे । तुम मेरे पास से जाने की बात कहते हो तो मुझे लगता है कि मुझसे कोई त्रुटि हुई है । यही सब कारण हैं कि मैं तुम्हें लेकर दुखी हूँ ।"

रामू ने फिर भी यही कहा, "मालिक ! मेरा चलेजाना ही अच्छा है ।"

दयानिधि ने भी ज्यादा दबाव नहीं डाला
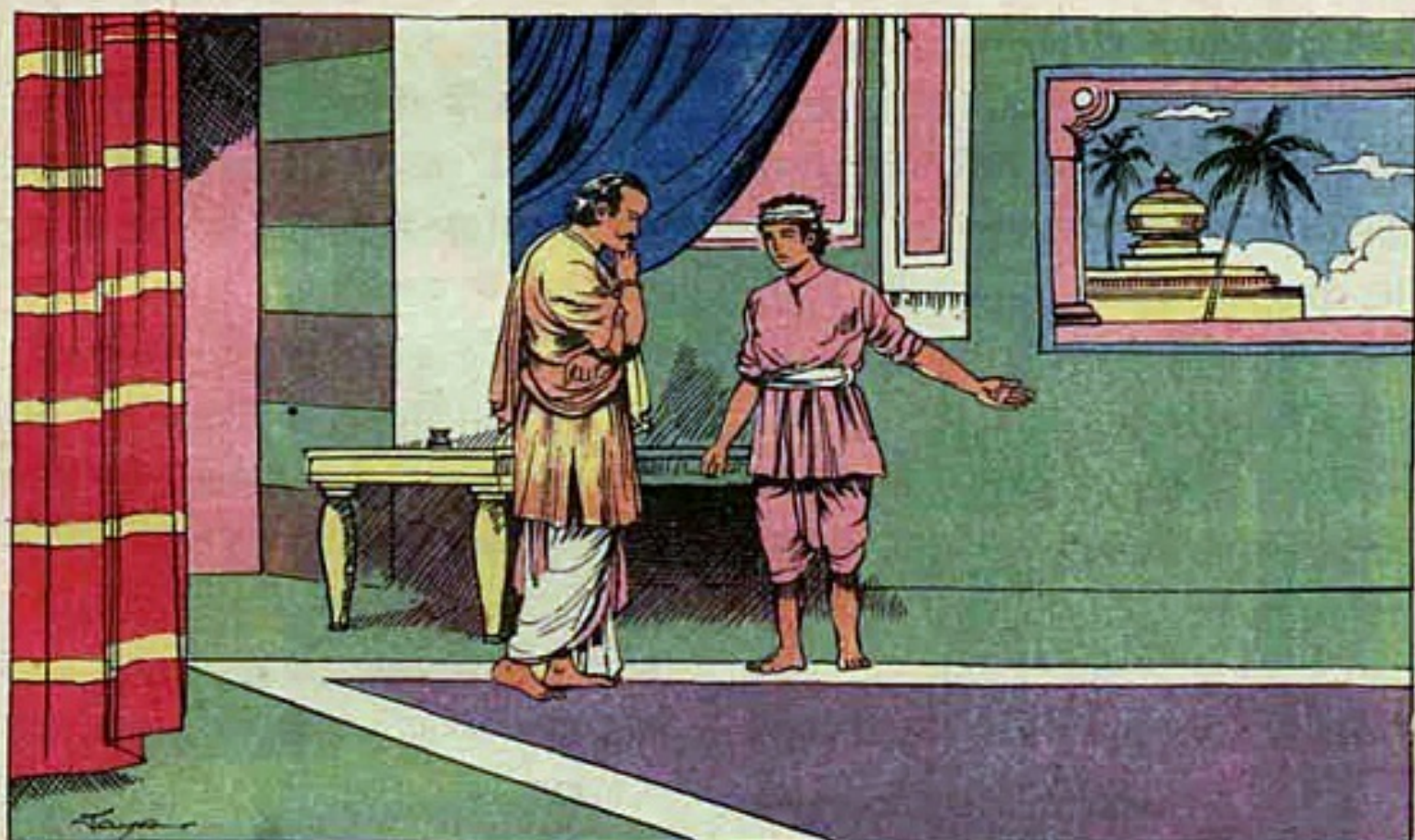
और उसे थोड़ा-सा धन देकर कहा, "मेरी कामना है, तुम जहाँ रहो, सुख से रहो !"

इसके बाद रामू वहाँ से चला गया ।

दयानिधि की पत्नी ने सारी बात सुनकर कहा, "चोरी का जब पता चला था, तभी वह धन अगर उसे दे देते, तो तुम्हारे प्रति उसका आदर बढ़ जाता । इनाम में देना अच्छा नहीं होता !" दयानिधि ने कहा ।

इस बात को कई साल गुज़र गये । दयानिधि अब बूढ़े होगये थे । उनका बेटा ही व्यापार के सब काम सभालता था ।

एक रात क़रीब बीस साल का एक युवक दयानिधि के घर में चोरी करते पकड़ा गया । उसे दयानिधि के सामने लाया गया तो वह उनके पैरों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर बोला, "मालिक ! मुझे माफ़ कर दो ! मुझे छोड़ दो ! एक जमाना था, जब रामू नाम का एक नौकर आपके यहाँ काम करता था, मैं उसी का लड़का हूँ !"

दयानिधि को बड़ा अचरज हुआ । उसने पूछा, "इस वक्त रामू क्या करता है ? कहां पर है वह ?"

"मालिक ! यहां से कोई पच्चीस कोस पर एक गाँव है, वहीं हम रहते हैं। आपने जो धन मेरे पिता को दिया था, उससे उन्होंने सब्जी का धंधा शुरू किया । उसके नफे से हमारे खाने-कपड़े का खर्च ही निकल पाता है, इसलिए मेरी माँ ने मुझे चोरी करने के लिए उकसाया ।"

"पर तुम मेरे ही घर में चोरी करने के लिए क्यों आये ?" दयानिधि ने कुछ खिन्न होकर पूछा । उसके मन में इस बात का दुख था कि इतने वर्षों के बाद भी रामू उसका अपकार करने की बात सोचता है ।

"मालिक ! मेरे पिताजी ने मुझसे कहा कि अगर चोरी ही करनी है तो मैं पहली चोरी आप ही के यहाँ करूँ । उनका कहना है कि चोरी के लिए आपका घर ज़्यादा अनुकूल पड़ता है, क्योंकि अगर मैं पकड़ा गया तो आप मुझे क्षमा करके छोड़ देंगे ।" रामू के बेटे ने सारी बात साफ़-साफ़ बता दी ।

यह जवाब सुनकर दयानिधि के आश्चर्य की सीमा न रही। उसने प्यार से उस लड़के को गले से लगा लिया और कहा, "सुन बेटे ! तू आगे से कभी चोरी मत करना। तू अब मेरे साथ यहीं रह। मैं तुझे व्यापार में लगाऊँगा और अपने जैसा धनवान बना दूँगा।"

बेताल ने अपनी कहानी पूरी कर कहा, "राजन्। रामू का बेटा चोरी करता पकड़ा गया, फिर भी दयानिधि ने उसे कोई दण्ड नहीं दिया, उलटे उसे व्यापार में अपने बराबर बना देने का आश्वासन दिया। बिना विवेक के उसने अपनी दयालुता प्रदर्शित की। ऐसे आचरण से और लोगों को चोर बनने का प्रोत्साहन मिलता है। दयानिधि के अन्दर की यह प्रवृत्ति उसकी दयालुता समझी जाये या उसका भोलापन—- ऐसा सन्देह होता है। इस सन्देह का समाधान अगर आप जानकर भी न करेंगे तो आपका सिर फूट कर टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा !"

इस पर विक्रमार्क ने जवाब दिया, "दुनिया में दयानिधि जैसे लोग विरले ही होते हैं। रामू के चोरी करने पर दयानिधि ने उसे क्षमा कर दिया। पर रामू के अपने घर से चले जाने पर दयानिधि के मन में यह सन्देह हमेशा बना रहा कि रामू ने उसकी दयालुता पर विश्वास नहीं किया हैं। पर अब इतने बरसों बाद भी रामू ने अपने मालिक की दयालुता की प्रशंसा की और अपने बेटे को उन्हीं के घर चोरी करने के लिए भेजा तो रामू के विश्वास से उसका सन्देह नष्ट हो गया। अपने ऊपर इतना प्रबल विश्वास रखनेवाले उस परिवार का उद्धार करना दयानिधि ने अपना फ़र्ज समझा। यह उसका भोलापन नहीं है। उत्तम चरित्रवाला पुरुष दूसरों की प्रशंसा की अपेक्षा नहीं करता। पर जब कोई उसकी उदारता या ऐसे ही अन्य किसी गुण को पहचान लेता है तो वह अवश्य प्रसन्न होता है। दयानिधि के व्यवहार का वास्तविक कारण यही है।"

राजा के इस प्रकार मौन होते ही बेताल शव के साथ अदृश्य होकर पुनः वृक्ष पर जा बैठा।

(कल्पित)

समय की सूझ

श्रीपुर के जमींदार का यह स्वभाव था कि वे किसी के भी काम से सन्तुष्ट नहीं होते थे। एक बार उन्होंने अपने आम के बगीचे में एक विश्राम भवन बनवाया। उसमें रंग करने के लिए एक मज़दूर की ज़रूरत पड़ी, पर जो भी व्यक्ति जमींदार के स्वभाव से परिचित था, इस काम के लिए तैयार न हुआ।

एक बार सोमनाथ नाम का एक होशियार युवक उस गाँव में आया। उसे सब बात पता लगी तो वह जमींदार से मिला और बोला, "मालिक ! मुझे एक हफ़्ते तक आपके गाँव में रहना पड़ रहा है। आप अपने विश्राम-भवन में रंग लगाने का काम मुझे देने की कृपा करें !"

"मैं जैसा रंग चाहता हूँ, अगर तुम वैसा नहीं कर सके, तो मैं तुम्हें मज़दूरी की एक कौड़ी भी न दूँगा। और अगर मैं तुम्हारे काम से सन्तुष्ट हो गया तो मज़दूरी से कुछ ज्यादा ही दे दूँगा।" जमींदार ने अपने मन की बात कह दी।

सोमनाथ ने उनकी शर्त मान ली। जमींदार अन्दर से लकड़ी की एक पेटी लाये और उसे सोमनाथ के हाथ में देकर बोले, "विश्राम-भवन की भीतरी दीवारों पर तुम्हें वही रंग लगाना है जो इस पेटी पर लगा हुआ है !"

सोमनाथ ने हामी भरी और हफ़्ते भर में रंग लगाने का काम पूरा कर दिया। जमींदार ने सोमनाथ से लकड़ी की वह पेटी वापस ली और उसे हर दीवार के पास ले जाकर दोनों के रंगों की मिलान करके देखने लगे। रंगों की समानता से जमींदार को बड़ा सन्तोष हुआ। उन्होंने सोमनाथ को मज़दूरी के साथ-साथ थोड़ा इनाम भी दिया और विदा कर दिया।

इस घटना के एक सप्ताह बाद जमींदार अपनी पत्नी के साथ विश्राम-भवन में गये और सोमनाथ की तारीफ़ करते हुए बोले, "देखो ! रंगों की मिलान कैसी अद्भुत है ! अवश्य ही सोमनाथ इस काम का कारीगर आदमी है। मैंने जो पेटी उसे नमूने के लिए दी थी, ठीक वही रंग दीवारों पर ! वाह ! क्या बात है ! अगर हमारी कचहरी में उसे नौकरी मिल जाती तो वह यहीं रह जाता !"

जमींदार की पत्नी को कुछ सन्देह-सा हुआ। उसने नाखून से पेटी के रंग को खरोंचा तो रंग की एक हल्की-सी परत उतर कर बाहर आ गयी। पेटी पर हाल ही में रंग किया गया है, यह रहस्य खुल गया। वह खिलखिलाकर हँस पड़ी और बोली, "सोमनाथ ने आपके आदेशानुसार पेटी का रंग दीवारों पर नहीं लगाया, बल्कि दीवारों पर जो रंग पहले ही था, उसी रंग को इस पेटी पर लगा दिया है।"

जमींदार को सोमनाथ की करनी पर बड़ा क्रोध आया, लेकिन उसकी चतुरता पर हँसे बिना न रह सका।
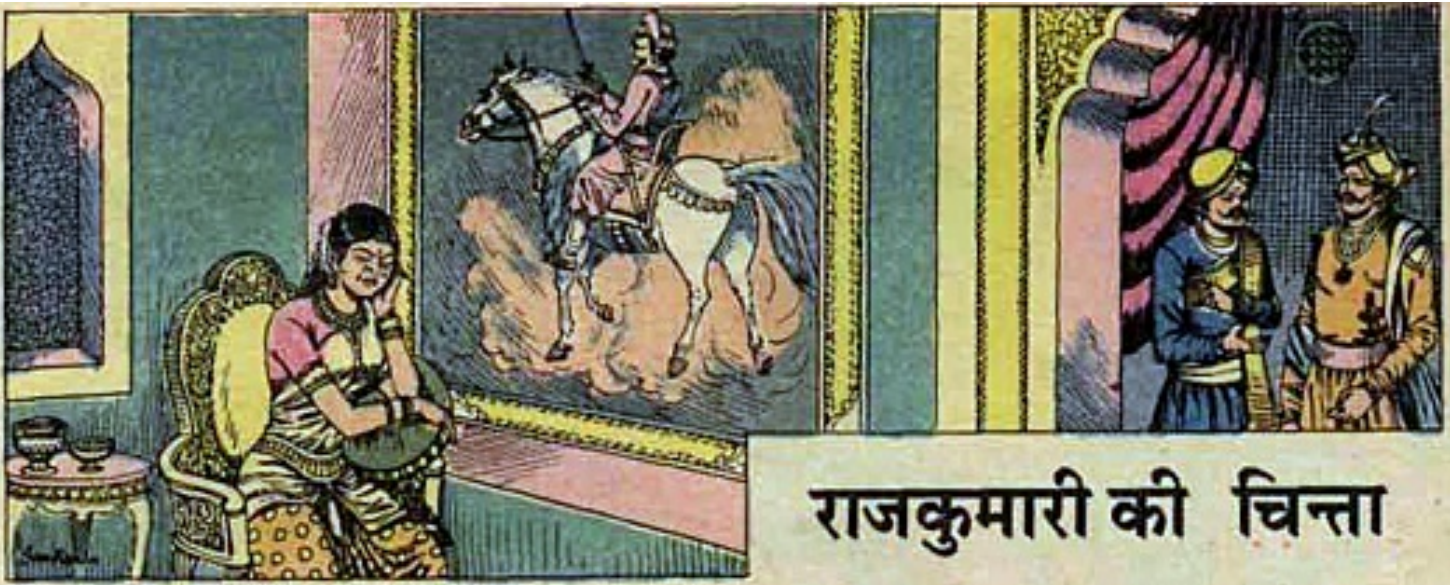
राजकुमारी की चिन्ता

कुसुमपुर के महाराज मनोहर सिंह बड़े कलाप्रेमी थे। जब उन्होंने देखा कि उनकी इकलौती बेटी स्वर्णलता चित्रकारी में बड़ी अभिरुचि रखती है, तो उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई। उन्होंने प्रसिद्ध चित्रकार द्योतक को बुलवाया और राजकुमारी का शिक्षक नियुक्त किया। धीरे-धीरे राजकुमारी चित्रकला में निष्णात होगयी।

एक दिन द्योतक ने महाराजा की सेवा में पहुँचकर निवेदन किया, "महाराज ! मैंने राजकुमारी को कला का पूरा अभ्यास कराया है। अब उन्हें सिखाने के लिए कुछ भी शेष नहीं रह गया। मुझे तो ऐसा लगता है कि वे चित्रकला में मुझसे भी अधिक गहरी जानकारी रखती हैं।"

महाराज मनोहर सिंह चित्रकार द्योतक की बात सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुए। उन्होंने उसे पुरस्कार देकर विदा किया।

कुछ दिन बीत गये। इस बीच स्वर्णलता ने एक चित्र आँका। इस चित्र में एक सुन्दर युवक एक सफ़ेद घोड़े पर सवार था। उसके एक हाथ में लगाम थी और दूसरे हाथ में वह तलवार लिये हुए था। चित्र समाप्त हुआ, लेकिन दूसरे ही दिन से स्वर्णलता के व्यवहार में एक विचित्र-सा परिवर्तन दिखाई देने लगा। राजकुमारी जब भी उस चित्र की तरफ़ देखती, उसकी आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित होने लगती थी। महाराजा तथा महारानी ने राजकुमारी को समझाया और उसकी चिन्ता का कारण पूछा, लेकिन वह कुछ बता नहीं सकी। दिन-प्रतिदिन उसका स्वास्थ्य भी गिरने लगा।

राजा को चिन्तित देखकर मंत्री अजय शर्मा ने राजा से निवेदन किया, "महाराज ! संभव है, राजकुमारी द्वारा अंकित चित्र में कोई त्रुटि हो, जिससे राजकुमारी चिन्ता का शिकार होगयी हैं। आप एकबार चित्रकार द्योतक को बुलवायें और

दीपक शर्मा

राजा के सामने निवेदन किया, ''महाराज ! आप क्षमा करें तो मैं कुछ कहना चाहती हूँ। मुझे ऐसा लगता है कि चित्र में अंकित युवक को राजकुमारी ने कहीं देखा है और वे उससे विवाह करने की अभिलाषा रखती हैं। यह बात आप पर प्रकट करने में उन्हें संकोच अनुभव होता है, शायद इसी कारण वे चिन्तित हैं।''

महाराज के मन में पहले से ही यह शंका थी। इन्दुलेखा की बात सुनकर उनका संशय और भी दृढ़ हो गया। वे महारानी को साथ लेकर स्वर्णलता के पास पहुँचे और स्नेहपूर्ण स्वर में बोले, ''बेटी ! तुमने जिस युवक को चित्र में अंकित किया है, क्या उसे कहीं देखा भी है ? यदि तुम्हें उस युवक के साथ विवाह की अभिलाषा हो तो हमें बता दो। हम उसे बुलायेंगे और उसके साथ तुम्हारा विवाह अवश्य करेंगे।''

पिता की बात सुनकर स्वर्णलता को बहुत चोट लगी। वह कुछ क्रुद्ध-सी होकर बोली, ''पिताजी ! आपकी बातों में कोई तथ्य नहीं है...।'' और फिर तकिये में मुँह छिपाकर रोने लगी।

महाराज मनोहर सिंह की समझ में कुछ न आया। उन्होंने शाम को मंत्री अजयशर्मा को उद्यान में बुलाकर सारी बातें बता दीं।

मंत्री भी कुछ देर के लिए सोच में पड़ गया। फिर कुछ निष्कर्ष निकालकर बोला, ''महाराज ! हमें एक घोषणा करनी चाहिए कि

उस चित्र का परीक्षण करवायें। शायद कोई हल निकल आये !''

महाराज मनोहर सिंह ने द्योतक को बुलवा भेजा और उससे चित्र की समीक्षा करने का अनुरोध किया। चित्रकार द्योतक ने बड़ी सूक्ष्मता से चित्र का परीक्षण किया और राजा से कहा,

''महाराज ! चित्र अत्यन्त श्रेष्ठ है। ऐसे चित्र का अंकन किसी भी साधारण कलाकार द्वारा संभव नहीं है। चित्र में किसी प्रकार की त्रुटि नहीं है। यह बात मैंने राजकुमारी को समझाने की कोशिश की, किन्तु कोई लाभ न हुआ।''

कुछ समय और बीता। एक दिन राजकुमारी की सबसे अन्तरंग सखी इन्दुलेखा ने एकान्त में

जो भी राजकुमारी की चिन्ता का कारण जानकर उसका सफल निदान प्रस्तुत करने में सफल होगा, उसे एक छोटी-सी जागीर दी जायेगी। हो सकता है इसका कोई परिणाम निकल आये !"

महाराज ने मंत्री के प्रस्ताव के अनुसार घोषणा करवादी । अनेक चित्रकार आये, मनोविज्ञान के अनेक विद्वान आये । सबने अपनी योग्यता के अनुसार प्रयत्न किया, लेकिन कोई भी राजकुमारी की चिन्ता का कारण नहीं जान सका ।

महाराज गहरे सोच-विचार में पड़ गये। तब एक दिन सुकेतु नाम का युवक राजा के दर्शनों को आया और उनसे मिलकर बोला, "महाराज ! अगर आप मुझे राजकुमारी द्वारा अंकित चित्र को परखने का अवसर दें तो मैं उनकी चिन्ता का कारण बता सकता हूँ ।"

महाराज उस अल्पवयस्क युवक की नादानी पर खीज उठे और बोले, "उस चित्र में कोई दोष नहीं है, यह बात चित्रकारों के गुरुओं के गुरु द्योतक ने कही है। तुम अपनी योग्यता के बारे में कुछ कहो !"

सुकेतु ने विनम्र होकर कहा, "महाराज ! क्षमा करें। जहां तक योग्यता का प्रश्न है, स्पष्ट है कि बड़े-बड़े चित्रकार इस चित्र का परीक्षण कर चुके हैं। पर यह भी सच है कि वे राजकुमारी की चिन्ता का कारण नहीं ढूंढ़ पाये। वास्तव में, मेरी योग्यता भी यहां महत्वपूर्ण नहीं है, महत्वपूर्ण है व्यवहार-कुशलता । वैसे मैं अल्पवयस्क ज़रूर हूँ, पर मैंने भी नन्दनगर के

राजदरबार में नाटक, चित्रकला, संगीत एवं साहित्य के प्रशिक्षक के पद पर कई वर्ष तक काम किया है ।"

"महाराज ! कृपया आप इन्हें भी एक अवसर दीजिए !" मंत्री ने कहा ।

राजा की अनुमति मिलते ही सुकेतु ने राजकुमारी के द्वारा अंकित चित्र का परीक्षण किया और राजकुमारी से कहा, "राजकुमारी । अब इस जन्म में आप इतना ही सुन्दर दूसरा चित्र नहीं आँक सकेंगी । यही आपकी चिन्ता है। जो संभव नहीं, उसके बारे में चिन्ता करने से क्या लाभ ?"

स्वर्णलता की आँखों में आश्चर्य था। राजा कुछ न समझ सके और कुछ क्रुद्ध होकर सुकेतु

से बोले, "मैंने तुमसे राजकुमारी की चिंता का कारण जानने के लिए कहा था, चित्रकला में उसकी दक्षता का मूल्यांकन करने के लिए नहीं कहा था ।"

"महाराज ! मैं वही निवेदन कर रहा हूं । यह चित्र ही राजकुमारी की चिंता का असली कारण है । कोई भी मनुष्य जब यह समझ लेता है कि अब उसे कामना करने के लिए कुछ नहीं रह गया है या अब उसे कुछ प्राप्त नहीं करना है, तब वह चिन्ता का शिकार हो जाता है । इस चित्र को बनाने के बाद राजकुमारी और कुछ न करने की स्थिति में आ गयी हैं । इसलिए मैं तो यही निवेदन करूँगा कि राजकुमारी को ललित कलाओं से प्रेम है । चित्रकला में वे सर्वश्रेष्ठ की प्राप्ति कर चुकी हैं, इसलिए अब ये संगीत और नृत्यकला का अभ्यास करें, अवश्य इनकी चिन्ता दूर होगी ।"

सुकेतु का प्रस्ताव सुनकर राजा ने अपनी पुत्री की ओर देखा । राजकुमारी मुस्करा कर बोली, "पिताजी ! इनकी बात बिलकुल सत्य है । इस चित्र को आँकने में मैंने अपनी प्रतिभा का पूरा उपयोग किया है । अब आँकने के लिए मेरे पास और कुछ नहीं है, यही मेरी चिन्ता का कारण था । लेकिन इन्होंने मुझे यह रोशनी दी कि मैं जीवन में और भी बहुत कुछ कर सकती हूं । मैं अब सचमुच ही नृत्य और संगीत का अभ्यास करना चाहती हूँ । इन कलाओं की साधना के लिए ये ही मेरे गुरु हो सकते हैं ।" यह कहकर राजकुमारी ने सुकेतु के चरणों में प्रणाम किया ।

महाराज ने प्रसन्न होकर सुकेतु से कहा, "आचार्य ! आप मेरी पुत्री के गुरु -पद को स्वीकार करें । कृपया इनकार न कीजिए । मैं अपने वचन के अनुसार आपको एक जागीर प्रदान करता हूँ ।"

सुकेतु ने हंसकर कहा, "महाराज ! मैं कला का पुजारी हूँ, मुझे राज्य नहीं चाहिए । मैं आपका सभासद् रहकर राजकुमारी को नृत्य और संगीत कलाओं का जरूर पूरा अभ्यास कराऊँगा !"

देवधर्म

कई शताब्दियों पहले की बात है, काशी राज्य पर एक धर्मनिष्ठ राजा राज्य करता था। उसके दो पुत्र थे। बड़े का नाम महिंसास और छोटे का नाम चंद्रकुमार था। महिंसास ही बोधिसत्व था। चंद्रकुमार जब छोटा बालक था, तो पटरानी का देहान्त हो गया।

कुछ समय बाद राजा ने एक और युवती से विवाह किया और उसे पटरानी बनाया। नयी रानी भी राजा की अत्यन्त प्रेमपात्री थी। एक वर्ष बाद उसने एक पुत्र को जन्म दिया। राजा ने अपने इस तीसरे पुत्र का नाम सूर्यकुमार रखा। उन्होंने प्रसन्न होकर पटरानी से पूछा, "अगर तुम्हें अपने पुत्र के लिए कोई वर चाहिए तो माँग लो !"

"आज नहीं महाराज ! समय आने पर मैं माँग लूँगी।" रानी ने जवाब दिया।

कई वर्ष बीतते गये। सूर्यकुमार वयस्क हुआ। एक दिन महाराज भोजन करने के बाद विश्राम कर रहे थे तो पटरानी ने राजा को स्मरण दिलाया, "स्वामी ! आपने मेरे पुत्र के जन्म के समय वर माँगने के लिए कहा था। अब आप अपने वचन का पालन करें और मेरे पुत्र को राजगद्दी दें !"

राजा क्षुब्ध हो उठे। "अग्निशिखाओं के समान प्रकाशित दो ज्येष्ठ पुत्रों के होते हुए तुम्हारे पुत्र का राज्याभिषेक करना संभव नहीं है।" राजा ने साफ़ जवाब दे दिया।

इस घटना के पश्चात राजा के मन में संशय रहने लगा कि पटरानी उनके ज्येष्ठ पुत्रों का अहित कर सकती है। इसीकारण एक दिन राजा ने महिंसास तथा चंद्रकुमार को बुलाकर कहा, "मेरे प्रिय पुत्रो ! मैंने सूर्यकुमार के जन्म के समय तुम्हारी सौतेली माँ को एक वर देने का वचन दिया था। अब वह सूर्यकुमार के लिए राजगद्दी की माँग करती है। मैं इतना अनुचित कार्य कभी नहीं कर सकता। लेकिन स्त्री-बुद्धि

प्रलयांतक होती है। वह तुम दोनों की हानि कर सकती है। इसलिए तुम दोनों इसी समय वन-प्रदेशों में चले जाओ। जब मेरी मृत्यु हो जाये, तब लौटना और इस राज्य पर शासन करना।''

सूर्यकुमार इन सब बातों से पूरी तरह अनजान था। जब उसने देखा कि उसके दोनों बड़े भाई राजभवन छोड़कर कहीं जाने की तैयारी कर रहे हैं तो सूर्यकुमार ने भी उनके साथ जाने की इच्छा प्रकट की। भाइयों की स्वीकृति मिलते ही उसने भी अपनी तैयारी कर ली और उनके साथ चल पड़ा।

तीनों भाई हिमालय के वनभागों में पहुँचे। बोधिसत्व एक घने वृक्ष की छाया में बैठ गये और सूर्यकुमार से बोले, ''सूर्य, तुम जाकर सामने वाले सरोवर में नहाओ, अपनी प्यास बुझाओ और फिर कमल के पत्तों में पानी भरकर हमारे लिए ले आओ!''

उस सरोवर पर एक जलराक्षस यक्ष का क़ब्जा था। यह सरोवर उस यक्ष को देते हुए कुबेर ने समझाया था, ''यक्ष, सुनो! अगर इस सरोवर में उतरनेवाले लोग देव धर्म जानते हों तो उन्हें छोड़ देना। पर उनमें से जो भी देवधर्म न जानता हो, उसका भक्षण कर लेना। साथ ही यह भी स्मरण रखना, कि जो इस सरोवर में न उतरे, उसे किसी प्रकार की हानि न पहुँचाना।

तब से अनेक मनुष्य उस जलराक्षस का ग्रास बन चुके थे। जब भी कोई सरोवर में उतरता, यक्ष उससे पूछता, ''देवधर्म क्या है?''...और जवाब न मिलने पर उसे खा लेता। आज जब सूर्यकुमार उस सरोवर में उतरा, तो यक्ष ने उससे पूछा, ''क्या तुम देवधर्म जानते हो?''

''हाँ, हाँ! जानता हूँ। देवधर्म का अर्थ है सूर्य और चंद्र।'' सूर्यकुमार ने उत्तर दिया।

''नहीं! तुम देवधर्म नहीं जानते!'' यह कहकर यक्ष सूर्यकुमार को अपने जलभवन में ले गया।

सूर्यकुमार को इतना विलम्ब होते देखकर महिंसास बोधिसत्व ने चंद्रकुमार को सरोवर के निकट भेजा। यक्ष ने उसे भी पकड़ लिया और पूछा, ''देवधर्म का अर्थ क्या है?''

चंद्रकुमार ने कहा, ''देवधर्म का अर्थ है चार

दिशाएँ !"

यक्ष ने कहा, "तुम भी देवधर्म नहीं जानते !" और उसे भी अपने जलभवन में ले गया ।

चंद्रकुमार को भी देर तक न लौटते देख बोधिसत्व को विश्वास हो गया कि उनके छोटे भाई किसी विपदा में फंस गये हैं। वे उठे और स्वयं सरोवर की ओर चल पड़े । सरोवर के किनारे उन्होंने दो मनुष्यों के पैरों के चिन्ह देखे, जो सरोवर के जल तक चले गये थे, लेकिन जल से बाहर आने के चिन्ह उन्हें दिखाई न दिये। बोधिसत्व ने सोचा, इस सरोवर में निश्चय ही किसी राक्षस का वास होना चाहिए। उन्होंने म्यान से अपनी तलवार खींच ली और लड़ने के लिए सन्नद्ध होकर खड़े हो गये ।

बोधिसत्व सरोवर में नहीं उतरे थे। इसलिए उस यक्ष ने एक वनवासी तपस्वी का वेश धारण किया और उनके सामने आकर बोला, "महानुभाव ! आप प्यासे दिखाई देते हैं, फिर भी आपने सरोवर में उतरकर न तो स्नान किया और न पानी ही पिया ! आप इस तरह सरोवर के तट पर क्यों खड़े हैं ?"

बोधिसत्व को ऐसा लगा कि सामने तपस्वी के छद्म वेश में खड़ा यह पुरुष ही यक्षराक्षस है। इसलिए उन्होंने स्पष्ट प्रश्न कर लिया, "क्या तुम्हीं मेरे छोटे भाइयों को पकड़ कर ले गये हो ?"

"जी हाँ ! मैं ही उन्हें पकड़कर ले गया हूँ !" यक्ष ने कहा ।

"ऐसा क्यों किया ?" बोधिसत्व ने फिर

पूछा ।

"इस सरोवर में जो लोग क़दम रखते हैं, वे मेरे अधीन हो जाते हैं !" यक्ष ने जवाब दिया।

"सरोवर में जो भी मनुष्य उतरेगा, उसे तुम्हारी अधीनता स्वीकार करनी होगी ।" बोधिसत्व ने फिर प्रश्न किया ।

"जो मनुष्य देवधर्म नहीं जानता, उसे मेरे अधीन रहना पड़ेगा !" यक्ष ने उत्तर दिया ।

"तुम जानना चाहो तो मैं तुम्हें देवधर्म बता सकता हूँ ।" महिंसास बोधिसत्व बोले ।

"मैं सुनना चाहता हूं !" यक्ष ने कहा ।

"निन्दा का भय रखनेवाले, शुभ कर्म करनेवाले, प्रेममय एवं शान्त प्रकृति के उत्तम पुरुष का धर्म ही देवधर्म है ।" बोधिसत्व ने

कहा ।

बोधिसत्व के उत्तर से यक्ष सन्तुष्ट हुआ । उसने उनका सत्कार किया और पूछा, "मैं आप पर प्रसन्न हूं । आपके दोनों छोटे भाइयों में से मैं एक को लौटा सकता हूँ । आप किसे चाहते हैं !"

"अपने सबसे छोटे भाई सूर्यकुमार को !" बोधिसत्व ने कहा । इस पर यक्ष बोला, "हे विज्ञपुरुष । आप देवधर्म जानते तो अवश्य है, लेकिन उसे पालन करना नहीं जानते ।"

"वह कैसे ?" बोधिसत्व ने प्रश्न किया ।

"आप अपने दोनों भाइयों में से बड़े को छोड़कर छोटे की मांग कर रहे हैं और इस तरह बड़े का अनादर कर रहे हैं ।" यक्ष बोला ।

"यक्ष ! मैं देवधर्म का पालन करता हूँ, इसीलिए मैंने यह मांग की । मुझे अपने छोटे भाई के कारण ही वन में आना पड़ा । मेरी सौतेली माता ने उसके लिए हमारे पिता से राज्य माँगा । पिता ने हमारे अमंगल की आशंका से हमें कुछ दिन के लिए वन में रहने की आज्ञा दी । अब ऐसी स्थिति में अगर मैं अपने इस छोटे भाई के बिना नगर में लौटता हूँ, तो सारा वृत्तान्त सुनने के बाद भी कौन यह विश्वास करेगा कि हम दो भाई सकुशल रहे और सौतेले छोटे को किसी यक्ष ने निगल डाला ।" बोधिसत्व ने कहा ।

"साधु, साधु ! महानुभाव ! आप न केवल देवधर्म जानते हैं, बल्कि आपमें उसका व्यावहारिक ज्ञान भी है ।" यक्ष ने बोधिसत्व की प्रशंसा की और फिर दोनों कुमारों को जलभवन से लाकर महिंसास के हाथों में सौंप दिया ।

वन-निवास करते तीनों भाइयों का कुछ और समय निकला । एक दिन उन्हें समाचार मिला कि उनके पिता की मृत्यु होगयी है । युवराज महिंसास अपने दोनों छोटे भाइयों चंद्रकुमार और सूर्यकुमार के साथ काशी लौटे । धूमधाम से उनका राज्याभिषेक हुआ । बोधिसत्व महिंसास ने चंद्रकुमार को यवराज और सूर्यकुमार को सेनापति-पद पर नियुक्त किया । अनेक वर्षों तक वे अपने दोनों भाइयों के साथ शांतिपूर्वक राज्य-संचालन करते रहे ।

तमसा

प्राचीन काल की बात है । महामुनि शुक्राचार्य एक वन में कुटी बनाकर रहते थे । उनकी एक पुत्री थी, नाम था अरजा । महामुनि की कुटी के समीप ही एक सुन्दर सरोवर था । अरजा को उसमें जलक्रीड़ा करना बड़ा अच्छा लगता था ।

एक दिन अरजा उस सरोवर में कल्लोल कर रही थी कि तभी दण्डक नाम का एक राजा उधर से आ निकला । राजा ने एक झाड़ी के पीछे छिपकर अरजा को देखा और उसके सौन्दर्य पर मोहित हो गया ।

अरजा जब सरोवर से बाहर आयी, तो राजा दण्डक ने उसके सामने आकर उससे प्रेम-निवेदन किया और विवाह करने की इच्छा प्रकट की । राजा ने उसे अपने साथ चलने का आग्रह किया, पर अरजा ने अस्वीकार कर दिया । राजा ने उसे बलपूर्वक खींच ले जाने की कोशिश की । बड़ी कठिनाई से अरजा ने अपने को राजा के चंगुल से छुड़ाया और कुटी की ओर दौड़ गयी ।

अरजा हाँफती हुई पिता के पास पहुँची और राजा के द्वारा अपने अपमानित होने का समाचार पिता को सुनाकर रोने लगी। मुनि राजा के इस अधम व्यवहार पर असहनीय क्रोध से भर उठे।

महामुनि शुक्राचार्य ने शाप दिया, "यह राज्य पाप से भरा हुआ है। यहां राजा असहाय की रक्षा नहीं करता, बल्कि स्वयं उसके त्रास का कारण बनता है। इसलिए इस राज्य में धर्मात्मा तथा साधु प्रकृति के लोगों के अलावा शेष सब नष्ट हो जाये!"

मुनि के शाप के परिणाम स्वरूप अग्निज्वालाएं प्रकट हुईं और सारे राज्य में फैल गयीं। मुनि ने वन छोड़ दिया, लेकिन मुनिकुमारी अरजा ने सरोवर में प्रवेश किया और अग्नि के शान्त होने तक वहीं बनी रही। राज्य के सारे सरोवर, सारी नदियां सूख गयीं, पर अरजा का वह सरोवर पानी से भरा रहा।

जो लोग अग्निज्वालाओं से बच गये, वे दूर देशों की ओर भाग गये। देखते-देखते दण्डक राज्य राख की ढेरी बन गया। चारों तरफ़ श्मशान का-सा दृश्य था। बस कभी-कभी एकाध अशकुनी पक्षी वहाँ उड़ता नज़र आता था।

बहुत दिन बीते। शाप की अवधि भी शायद पूरी हुई। इसीलिए भारी वर्षा हुई। परिणाम स्वरूप अरजा का वह सरोवर एक झरने के साथ मिल गया और उसने नदी का रूप धारण कर लिया और वह नदी उस मरुभूमि बने वन में बहने लगी। पक्षी दूर-दूर से फल लाकर जो बीज गिराते थे, उनमें अंकुर फूट निकले। धीरे-धीरे उन्होंने पौधों और फिर विशाल वृक्षों का रूप धारण कर लिया। पक्षियों से वन भर उठा।

कालान्तर में नदी के दोनों तरफ़ का यह वन फैलकर गहन बनता गया। दण्डक राज्य में होने के कारण इसे दण्डकारण्य नाम मिला। ऋषियों ने उस नदी को 'तमसा नदी' के नाम से पुकारा।

बहुरूपिया

सिंहपुर राज्य में एक बहुरूपिया रहता था, नाम था मल्लवर्मा । वह नाना वेश धारण करके, वेश के अनुरूप हाव-भाव और वार्तालाप का प्रदर्शन करके पंडित और मूढ़ सभी की प्रशंसा प्राप्त करता था ।

एक बार दशहरे के उत्सव पर सिंहपुर राज्य के ही एक गाँव के युवकों के बीच मल्लविद्या की प्रतियोगिताएँ चल रही थीं । मल्लवर्मा ने सिंहपुर के सेनापति का वेश धारण किया और अपने व्यक्तित्व से सबको प्रभावित करता हुआ वहाँ पहुँचा । गाँव के बुजुर्गों ने उसे अपने देश का सेनापति मानकर अत्यन्त आदर के साथ ले जाकर एक ऊँचे आसन पर बैठाया ।

प्रतियोगिताएं समाप्त हुईं । गाँव के बुजुर्गों ने मल्लवर्मा के हाथों से विजेताओं को पुरस्कार दिलवाये । उसने बड़ी शान का अभिनय करके पुरस्कार बाँट दिये और उपस्थित जनसमूह को सम्बोधित कर कहा, "मेरे बुज़ुर्गों ! छोटे-बड़े भाइयो ! आप मुझे क्षमा करें । यह हमारे लिए अत्यन्त दुर्भाग्य की बात है कि आज यहां हमारे देश के सेनापति उपस्थित नहीं हैं । अगर आज उन्होंने इन युवकों का बलप्रदर्शन देखा होता तो निश्चय ही वे इन्हें सेना में उचित पद प्रदान कर देते ।"

मल्लवर्मा की बातें सुनकर गाँव के सभी लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । तब उदयभट्ट नाम का एक प्रसिद्ध पंडित सब कुछ समझकर मल्लवर्मा के निकट पहुँचा और बोला, "तुम्हारा यह वेश सचमुच प्रशंसनीय है । हम तुम्हारी इस अभिनय कला की हृदय से तारीफ़ करते हैं । अच्छा, अब तुम सबको अपना परिचय दो !"

मल्लवर्मा ने अपना परिचय देकर निवेदन किया, "आप सब महानुभाव, नागरिक जन मेरी भूल-चूक क्षमा करें । उत्सव के दिन आप सबका मनोरंजन करने के विचार से मैं इस वेश में आप लोगों के बीच आया हूँ ।" यह कह कर

गणेश ठाकुर

मल्लवर्मा ने अपना सेनापति का वेश हटा दिया और सबको हाथ जोड़कर नमस्कार किया ।

पंडित उदयभट्ट ने मल्लवर्मा की बड़ी प्रशंसा की और कहा, "तुम न केवल वेश बदलना जानते हो, बल्कि वेश के अनुरूप व्यवहार करना भी जानते हो । तुम्हारे पास हुनर है तो तुम इस देश के राजा वीरसेन के दरबार में अपनी कला का प्रदर्शन क्यों नहीं करते ?"

"वाह ! आपने यह कैसी बात कही ? देश के महाराजा के सामने बहुरूपिया जैसी साधारण कला का प्रदर्शन कौन करेगा ? यह तो दिल्लगी की बात होगी ।" मल्लवर्मा ने अपना संकोच प्रकट किया ।

"इसमें दिल्लगी की क्या बात है ? हमारे राजा बड़े कलाप्रेमी हैं । वे कलाकारों का अत्यन्त सम्मान करते हैं । कोई भी कला साधारण नहीं होती, अगर उसका प्रदर्शन असाधारण हो । तुम मेरी बात मानकर अवश्य ही राजा के दर्शन करो !" उदयभट्ट ने मल्लवर्मा को सलाह दी ।

इतने बड़े पंडित से प्रोत्साहन पाकर मल्लवर्मा उत्साह से भर गया । साहस करके वह राजधानी सिंहपुर पहुँचा और महाराज के दर्शन कर उनसे बोला, "महाराज ! आप अनुमति दें तो मैं आपके समक्ष दो वेश प्रदर्शित करना चाहता हूँ ।"

राजा ने मल्लवर्मा को स्वीकृति दी ।

पहले दिन मल्लवर्मा ने संन्यासी का वेश धारण किया और राजसभा में प्रवेश कर सबको तत्वोपदेश किया । उपदेश में संस्कृत वाणी की

गरिमा, श्लोकों का उच्चारण, विषय की गहरायी सब कुछ अत्यन्त शुद्ध और सुन्दर था। राजा और सभासद् सभी ने हर्षध्वनि की।

राजा ने उसे एक सौ स्वर्ण मुद्राएँ भेंट करनी चाहीं, पर मल्लवर्मा ने उदासीन भाव से इनकार कर दिया और गंभीर स्वर में कहा, "महाराज ! मैं तो संसार से विरक्त संन्यासी हूँ। मुझे धन से क्या प्रयोजन ?" और राजसभा से चला गया।

अगले दिन मल्लवर्मा ने एक नर्तकी का वेश धारण किया और राजदरबार में पहुँच कर अद्भुत नृत्य के प्रदर्शन से सबको मंत्रमुग्ध कर लिया। सभासदों ने बड़े जोर-शोर से करतल-ध्वनि की। आज भी राजा ने उसे एक सौ स्वर्ण मुद्राएं भेंट करनी चाहीं। पर मल्लवर्मा ने विनीत भाव से हाथ जोड़ लिये और नम्र स्वर में बोला, "महाराज ! मैंने सुना है कि आप अत्यन्त कलाप्रेमी हैं। इसीलिए मैं आपकी सेवा में आया हूँ। ये सौ स्वर्ण मुद्राएं आपकी कलाप्रियता की तुलना में तुच्छ हैं। आप कृपा कर मेरी विद्या के अनुरूप पुरस्कार प्रदान कीजिए !"

मल्लवर्मा की बातों से राजा को आश्चर्य हुआ। वे किंचित् कठोर होकर बोले, "कल मैंने तुम्हें सौ स्वर्ण मुद्राएं भेंट की तो तुमने लेने से इनकार कर दिया। आज उसी राशि को तुम कम बताते हो। तुम्हारा यह व्यवहार मुझे आश्चर्य में डाल रहा है।"

"महाराज ! कल मेरा वेश संन्यासी का था। मुझे उसी के अनुरूप दार्शनिक और वैराग्य भाव का प्रदर्शन करना था। आज मेरा वेश एक नर्तकी का है। इस पात्र के मन में सांसारिक भोग और धनदौलत के प्रति एक स्वाभाविक तृष्णा होती है। मैंने इस पात्र के अनुरूप ही आज का व्यवहार किया है !"

राजा मल्लवर्मा का तर्क सुनकर राजा अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे पाँच सौ स्वर्णमुद्राएं प्रदान कर विदा किया।

पाषाण-प्रतिमा

इंद्रपुरी में वज्रगुप्त नाम का एक करोड़पति व्यापारी रहता था। उसकी दो पत्नियाँ थीं। बड़ी पत्नी की पुत्री का नाम वासन्ती था और छोटी पत्नी की पुत्री का नाम पद्मावती था। दोनों लगभग एक ही उम्र की थीं। वासन्ती और पद्मावती का स्वभाव एक-दूसरे से बिलकुल भिन्न था। वासन्ती कठोर स्वभाव की थी और दूसरों के सुख एवं यश को सहन नहीं कर पाती थी। उसे अपने नौकरों-चाकरों को सताने में आनन्द आता था। पद्मावती का स्वभाव कोमल था। दूसरों को सुखी देख वह प्रसन्न हो उठती थी। नौकरों-चाकरों के प्रति भी उसका सहानुभूति पूर्ण व्यवहार था।

वासन्ती और पद्मावती के स्वभाव में जहाँ इतनी भिन्नता थी, वहाँ रूप दोनों बहनों का समान था। दोनों की शकलें इतनी अधिक मिलती थीं कि अपरिचित लोगों को अक्सर भ्रम हो जाता था। परिचित लोग भी उन्हें स्वभाव की भिन्नता से ही पहचान पाते थे।

वासन्ती पद्मावती से केवल कुछ ही दिन बड़ी थी। वह स्वार्थी और कठोर तो प्रकृति से ही थी, पर उसकी मान्यता भी यही थी कि इतने धनी परिवार में जन्म लेने के कारण उसको ऐसा ही आचरण शोभा देता है- असहनशील और कठोर व्यवहार ही उसके लिए ज्यादा स्वाभाविक है। वह अपने को बड़ी उत्तम प्रकृतिवाली समझती थी। पर साथ ही उसे यह भी भान था कि उसके व्यवहार से उसका अपयश होता जा रहा है और इसका सारा दोष वह पद्मावती को देती थी। पद्मावती उसे बदनाम करने के लिए अच्छे कार्य करती है, दूसरों के साथ शिष्टता दिखाती है— यह मानकर वासन्ती किसी न किसी बात को लेकर हर रोज़ अपनी बहन पद्मावती से झगड़ा किया करती थी।

इस पर पद्मावती बड़ी नम्रता से अपनी बहन वासन्ती से कहती, "दीदी! तुम रोज़ किसी न

विमला गर्ग

किसी बात को लेकर झगड़ा खड़ा करती हो। अगर हम दोनों आपस में स्नेहपूर्वक रहें, तो लोग भी हमारा आदर करेंगे।"

"तुम सबके आदर की बात छोड़ दो। तुम सबसे पहले मेरा आदर करो ! तुम भी दूसरों के साथ मेरी तरह व्यवहार करो !" वासन्ती खीज कर बोली।

वासन्ती की तरह व्यवहार करना पद्मावती के वश की बात न थी और पद्मावती जैसा व्यवहार वासन्ती के लिए असंभव था। पद्मावती की सारी नम्रता के बावजूद वासन्ती के हृदय का द्वेष कम न हुआ और दोनों बहनों के बीच की दूरी भी बढ़ती गयी।

उन्हीं दिनों की बात है। एक बार चंद्रकान्त नाम का एक शिल्पी वज्रगुप्त के घर में आया। वज्रगुप्त ने सोचा कि अपने विशाल भवन के प्रांगण में एक कलामन्दिर का निर्माण करवाया जाये और उसके मुख्य कक्ष में एक सुन्दर शिल्प की प्रतिष्ठा हो।

चंद्रकान्त नवयुवक था, अल्पवयस्क था, फिर भी सर्वश्रेष्ठ शिल्प कलाकारों की श्रेणी में गिना जाता था। वह अपना कार्य अत्यन्त लगन और निष्ठा से सम्पन्न करता था। कलामन्दिर के निर्माण का कार्य उसे सौंपा गया। वासन्ती और पद्मावती उसकी कारीगरी देखने के लिए हर रोज़ कला मन्दिर पहुँच जातीं। वे शिल्पकला के बारे में उससे अनेक सवाल पूछती; लेकिन इस पूछताछ में भी दोनों के व्यवहार में अन्तर होता। पद्मावती चंद्रकान्त से विनम्रता के साथ प्रश्न करती, जबकि वासन्ती के व्यवहार में मालकिन होने का अहं प्रकट होता। चंद्रकान्त उनके व्यवहार पर कोई विशेष ध्यान दिये बिना दोनों को समान उत्तर देता था।

चंद्रकान्त का यह व्यवहार वासन्ती को कुछ विचित्र-सा लगता था। क्योंकि पद्मावती के साथ व्यवहार करते समय लोगों में स्नेह और कुतूहल का भाव रहता था और वासन्ती के साथ लोग डरते-सहमते हुए व्यवहार करते थे। जिज्ञासावश वासन्ती अकेली ही कभी-कभी चंद्रकान्त के पास जाने लगी।

एक दिन चंद्रकान्त ने वासन्ती को चकित करते हुए यह कहा, "आप दोनों बहनों में मैं

आपको अधिक पसन्द करता हूँ ।"

वासन्ती ने उसकी बात का यक़ीन नहीं किया और बोली, "तुम झूठ बोलते हो !"

"मुझे झूठ बोलने की कोई विवशता नहीं है ।" चंद्रकान्त ने तत्परता से जवाब दिया ।

वासन्ती ने चंद्रकान्त की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखा और बोली, "तुम कलाकार अवश्य हो, लेकिन हमारे यहाँ पारिश्रमिक लेकर काम करने आये हो ! इस तरह से हम तुम्हारे मालिक हैं और तुम हमारे कर्मचारी हो । तुम्हारे साथ मेरा व्यवहार इसी मालिक-नौकर सम्बन्ध के आधार पर सहज और स्वाभाविक है, लेकिन पद्मावती तुमसे इस तरह बात करती है, मानो तुम मालिक हो और वह तुम्हारी सेविका है । तुम कर्मचारी हो, तुम्हें उसका व्यवहार अवश्य ही बहुत अच्छा लगता होगा !"

चंद्रकान्त ने बड़ी सहनशीलता दिखाकर कहा, "नहीं, यह बात सच नहीं है । तुम रूपवती हो । अहंकार ने तुम्हारे सौन्दर्य को और बढ़ा दिया है । मैं तुम्हारे इस सौन्दर्य का दास बन गया हूँ । तुम मुझसे कुछ भी कहो, मुझे अच्छा लगेगा ! मैं तुम्हें प्यार करता हूँ, वासन्ती ! यह बात सच है ।"

सुन कर वासन्ती को क्रोध आ गया । तुनक कर बोली, "क्या तुम अभी तक इतना भी नहीं जान सके कि मैं अपनी हैसियत से बड़ी हैसियत वाले परिवार के युवक से प्यार करूँगी, तुम जैसे कामगर आदमी के साथ नहीं !"

"मैं यह बात जानता हूँ, लेकिन मेरा प्यार इस बात को समझना नहीं चाहता !" चंद्रकान्त ने कहा ।

वासन्ती भीतर ही भीतर प्रसन्न भी थी । इतने समय बाद किसी ने उसकी छोटी बहन की उपेक्षा करके उसे प्यार किया था । यहाँ भी उसका अहं ही कारण था । वह अक्सर चंद्रकान्त से मिलने जाती, लेकिन उसे छोटा आदमी मानकर ही उससे व्यवहार करती ।

"मुझे छोटा मानकर दुख क्यों पहुँचाती हो ?" चंद्रकान्त ने एकबार व्यथित स्वर में पूछा ।

"ग़रीब लोगों के लिए अमीर लोगों की प्रशंसा करना स्वाभाविक है । अमीर लोगों के

लिए गरीब लोगों की उपेक्षा करना स्वाभाविक है।" यह जवाब देकर वासन्ती ने चंद्रकान्त को चेतावनी दी, "तुम भले ही मुझसे प्यार करते रहो, लेकिन मेरे साथ विवाह करने का सपना मत देखने लगना !"

कुछ दिन बीते। इस बीच पद्मावती अपनी ननिहाल रामापुर गयी। वहां दो साल से पानी नहीं बरसा था। लोग पानी की तंगी से बेहाल थे।

पद्मावती को यह बात मालूम हुई तो अपने तीनों मामा से कहा, "आप लोग कुएँ खुदवालें तो पानी की तंगी कुछ तो दूर होगी।"

"हमने कई जगह खुदाई करवायी, पर कहीं भी पानी का स्रोत न मिला !" उन्होंने जवाब दिया।

तभी एक अद्भुत घटना हुई। पद्मावती को अचानक पृथ्वी के अन्दर क़ीमती निधियों तथा जल-प्रवाहों का दर्शन हुआ। उसने सारा गाँव घूमकर गाँव वासियों को वे-वे स्थान दिखाये, जहाँ छिपी हुई निधियाँ और जल के सोते थे। पहले तो उन्होंने पद्मावती की बात का विश्वास नहीं किया, लेकिन जब प्रयत्न करके देखा तो पद्मावती की बात सच निकली। गाँव की पानी की समस्या हमेशा के लिए हल होगयी और लोगों को धन की प्राप्ति भी हुई।

गांव के लोगों की खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उन्होंने एक आम सभा बुलायी और आपस में चर्चा करके यह निर्णय सर्वसम्मति से स्वीकार किया, "पद्मावती मानवी नहीं, देवी है। हम पद्मावती की एक पाषाणमूर्ति गाँव के बीचो-बीच स्थापित करेंगे। इस तरह हमारा गाँव कभी जल-संकट का शिकार नहीं होगा।"

गाँव के प्रमुख लोग मिलकर पद्मावती के पिता वज्रगुप्त के पास गये और अपनी इच्छा प्रकट की।

वज्रगुप्त प्रसन्न होकर बोले, "जीवनकाल में किसी की मूर्ति स्थापित हो, यह भाग्य विरले को ही प्राप्त होता है !" उन्होंने पाषाण में पद्मावती की मूर्ति के निर्माण का कार्य भी शिल्पी चंद्रकान्त को सौंप दिया।

वासन्ती ने सब समाचार सुना तो उसे पद्मावती से और भी ईर्ष्या-द्वेष और जलन हुई। उसने कुछ गुंडों से गुप्त मंत्रणा की और उन्हें धन देकर सब पाठ पढ़ा दिया। इधर रामापुर में

पद्मावती की मूर्ति स्थापित हुई, उधर गुंडों ने उस गाँव में चोरी, डकैती और झगड़े-फसाद शुरू कर दिये ।

उन गुंडों में से एक ने वैरागी का वेश धारण किया और सारे गाँव में घूम-घूमकर यह प्रचार करना प्रारंभ कर दिया कि इन सारे झगड़ों का कारण यह पाषाण-प्रतिमा है। यह सारे गाँव के लिए अनिष्टकारक है । गाँवके लोगों में बड़ी हलचल मच गयी ।

वज्रगुप्त के कानों में भी सारा समाचार पड़ा। वह दुखी होकर चंद्रकान्त के गुरुशिल्पी के पास गया और बोला, "आचार्य ! आपने ही अपने शिष्यों में से चंद्रकान्त को चुनकर मेरे पास भेजा था। मैंने उसकी प्रतिभा पर विश्वास किया और कलामन्दिर तथा उसके शिल्प-निर्माण का कार्य उसे सौंप दिया । अब पता लगा कि उसकी शिल्प मूर्तियाँ त्रुटिपूर्ण और अनिष्टकारी हैं। मेरी पुत्री पद्मावती बड़ी गुणवती है। अगर उसकी प्रतिमा से कोई अनिष्ट होता है, तो इसमें दोष पद्मावती का नहीं, मूर्ति और मूर्तिकार का होना चाहिए ।"

वज्रगुप्त की बात सुनकर गुरुशिल्पी को बड़ा आश्चर्य हुआ। वे बोले, "चंद्रकान्त मेरा सर्वोत्तम शिष्य है, प्रतिभावान भी है। उसका शिल्प दोषपूर्ण नहीं हो सकता ।"

आचार्य वज्रगुप्त और पद्मावती को साथ लेकर रामापुर गये । प्रतिमा देखकर वे बोले, "वज्रगुप्त ! तुम्हारा कहना सच है ! इस प्रतिमा में त्रुटि है। पद्मावती की रूपरेखाओं और इस

शिल्प की बनावट में कुछ मौलिक अन्तर है !"

उन्होंने उसी समय चंद्रकान्त को बुलवाया और उसकी तरफ़ तीक्ष्ण दृष्टि डालकर गरज कर बोले, "मैंने सोचा था कि तुम मेरे यश में चार चांद लगाओगे। लेकिन यह मूर्ति इस बात का प्रमाण है कि तुमने कला के नाम को कलंकित किया है । यह मूर्ति त्रुटिपूर्ण है ।"

चंद्रकान्त ने गुरु को झुककर प्रणाम किया और विनीत स्वर में कहा, "गुरुदेव ! त्रुटि मेरी शिल्पविद्या की नहीं है, मेरी है। मैंने जो मूर्ति बनायी है, वह पद्मावती की नहीं, वासन्ती की है !"

"लेकिन तुमने ऐसा किया क्यों ?" आचार्य ने क्रुद्ध होकर पूछा ।

"छोटी बहन पद्मावती की प्रतिमा की प्रतिष्ठा होते देख वासन्ती दुख और ईर्ष्या से भर गयी थी। मैं वासन्ती को प्यार करता हूँ। दोनों बहनों की रूप रेखाओं में कोई विशेष अन्तर नहीं है। यह सोचकर मैंने वासन्ती की प्रतिमा का निर्माण किया। सोचा था कि इस भेद को कोई पहचान नहीं सकेगा। यह बात मैंने वासन्ती को भी नहीं बतायी है। मुझे नहीं मालूम था कि त्रुटिपूर्ण स्वभाव के व्यक्ति की मूर्ति भी अनेक लोगों का अनिष्ट कर सकती है। आप मुझे क्षमा करें।" यह कह कर चंद्रकान्त अपने गुरु के चरणों में गिर पड़ा।

वासन्ती को जब सारी बात मालूम हुई तो उसे बड़ी आत्मग्लानि हुई। वह समझ गयी कि अपने स्वभाव की त्रुटियों के कारण ही वह सब जगह बदनाम हो गयी है। वह पद्मावती के पास जाकर बोली, "बहन! मेरे मन में अब डर पैदा हो रहा है। अगर मैं ईर्ष्या-द्वेष त्याग कर सन्मार्ग पर नहीं चली तो मेरे व्यवहार से न केवल एक गाँव का, बल्कि पूरे देश का अनिष्ट हो सकता है। आज से तुम जो कहोगी, मैं करूँगी। मुझे उत्तम मार्ग पर ले चलो!"

अपनी पुत्री के अन्दर यह परिवर्तन देख वज्रगुप्त को बड़ी प्रसन्नता हुई। वह चंद्रकान्त के प्रति भी सदय बना रहा। वासन्ती इतनी कठोर-हृदया है, उसके सारे दुर्गुणों के जानने के बाद भी चंद्रकान्त उससे प्यार करता है—यह सोचकर वज्रगुप्त ने उससे वासन्ती का विवाह भी कर दिया।

चंद्रकान्त के साथ विवाह होने के बाद वासन्ती ने स्वयं खड़ी होकर पति से पद्मावती की मूर्ति गढ़वायी और उसकी प्रतिष्ठा रामापुर में की।

ग्रामवासियों ने समझ लिया कि वासन्ती के भीतर जो यह उत्तम परिवर्तन हुआ है, उसका कारण चंद्रकान्त है। तब से लोग आपस में कहा करते, "चंद्रकान्त केवल मनुष्यों को ही प्रतिमाओं का रूप नहीं देता, बल्कि प्रतिमाओं को भी मनुष्यों के रूप में परिवर्तित कर सकता है।"

नमक का काढ़ा

एक गाँव में रामनाथ नाम का एक गृहस्थ रहता था। उसके एक पुत्र और एक पुत्री थी। कुछ वर्ष बाद पुत्र की शादी हुई तो बहू भी घर में आगयी। अब उस परिवार में तीन औरतें हो गयीं— माँ, बेटी और बहू।

अब बहू के आ जाने से उस घर में कुछ विषमता-सी पैदा होगयी। पहले मां-बेटी थीं तो उनकी रीति भी एक-सी थी। आदतें भी अलग न थीं। अब बहू आयी तो उसकी रीति अलग, आदत भी अलग। वैसे भी पराये घर की लड़की, नये घर के तौर-तरीके सीखने में समय तो लगता। उसे अपनी रीत के अनुकूल बनाने के लिए मां-बेटी बड़ी कोशिश और मेहनत करती थीं। बहू एक बार समझाने पर न समझ पायेगी, इस ख्याल से वे पहले कही हुई बात को बराबर दुहराया करती थीं।

एक दिन रामनाथ का साला उनके घर आया। रामनाथ की पत्नी अपने भाई की बड़ी आवभगत करने लगी। वह हर बात में विशेष सावधानी बरतती कि कहीं कुछ गड़बड़ न हो जाये और उसके भाई कुछ बुरा न मान जायें।

एक दिन वह पानी लेने के लिए घड़ा लेकर कुएं पर जाती हुई बोली, "बहू! मैंने चूल्हे पर दाल चढ़ा रखी है। थोड़ी देर बाद एक करछी नमक दाल में डाल देना। याद रखो, भूलना नहीं!"

दो दिन पहले बहू दाल में नमक डालना भूल गयी थी। इसलिए उसने बहू को बार-बार याद दिलायी।

उस वक्त बहू किसी दूसरे काम में लगी हुई थी। इसलिए काम पूरा होते ही उसने दाल में नमक डाला और फिर किसी और काम में लग गयी।

थोड़ी देर बाद गृहस्थ की बेटी उपले बनाकर आयी और हाथ-पैर धोकर रसोई में गयी। उसने देखा, चूल्हे पर दाल पक रही है। भाभी

'चन्दामामा' में पच्चीस वर्ष पहले प्रकाशित कहानी

दाल में नमक डालना भूल गयी होगी, इसकी आदत ही ऐसी है, फिर मामाजी भी आये हुए हैं—यह सोचकर उसने भी करछी भर कर नमक दाल में डाल दिया और मवेशियों को चारा डालने चली गयी ।

इतने में गृहस्थ की पत्नी भी पानी लेकर कुएँ से लौट आयी । चूल्हे पर दाल पकते देख उसने सोचा, 'इस भुलकड़ बहू को बार-बार याद दिलाने से तो यही अच्छा है कि खुद कर लो'—और करछी भर नमक लेकर दाल में छोड़ दिया ।

दुपहर को साले-बहनोई भोजन करने के लिए बैठे । मेहमान भाई ने मुँह में एक कौर रख कर कहा, "यह क्या ? दाल में नमक डालना भूल गयीं ?"

गृहस्थ की पत्नी ने आश्चर्य चकित होकर कहा, "आप यह क्या कहते हैं भैया ! मैंने तो खुद दाल में नमक डाला है !"

रामनाथ की बेटी बोली,"माँ मैं ने भी तो दाल में एक करछी भर नमक डाल दिया था । मैंने सोचा कि कहीं दाल में नमक डालना भाभी भूल हो गयी हो, यदि दाल में नमक न रहा तो बाबूजी नाराज़ हो जायेंगे, और तिसपर मामाजी भी आये हुए हैं, वे भी बुरा न मान बैठे ! यह मेरी गलती थी कि मैंने भाभी से पहले नहीं पूछा। वरना यह नौबत न आ जाती !" यह कह कर वह अपनी करनी पर खुद पछताने लगी ।

"माताजी ! आपने कहा था कि कहीं मैं दाल में नमक डालना न भूल जाऊँ, इसलिए मैंने भी नमक डाल दिया था ।" बहू ने बताया ।

"अच्छा, अच्छा ! इसीलिए यह दाल नमक का काढ़ा बन गयी है ।" रामनाथ का साला मज़ाक के स्वर में बोला ।

अपने परिवार की स्त्रियों में एकता का अभाव देखकर रामनाथ को बड़ा बुरा लगा । उसने कुछ कठोर स्वर में आदेश दिया, "आज से तुम लोग अपना-अपना काम खुद करना । एक का काम दूसरा न करे !"

उस दिन के बाद से उस घर में इस प्रकार की कोई गड़बड़ न हुई ।
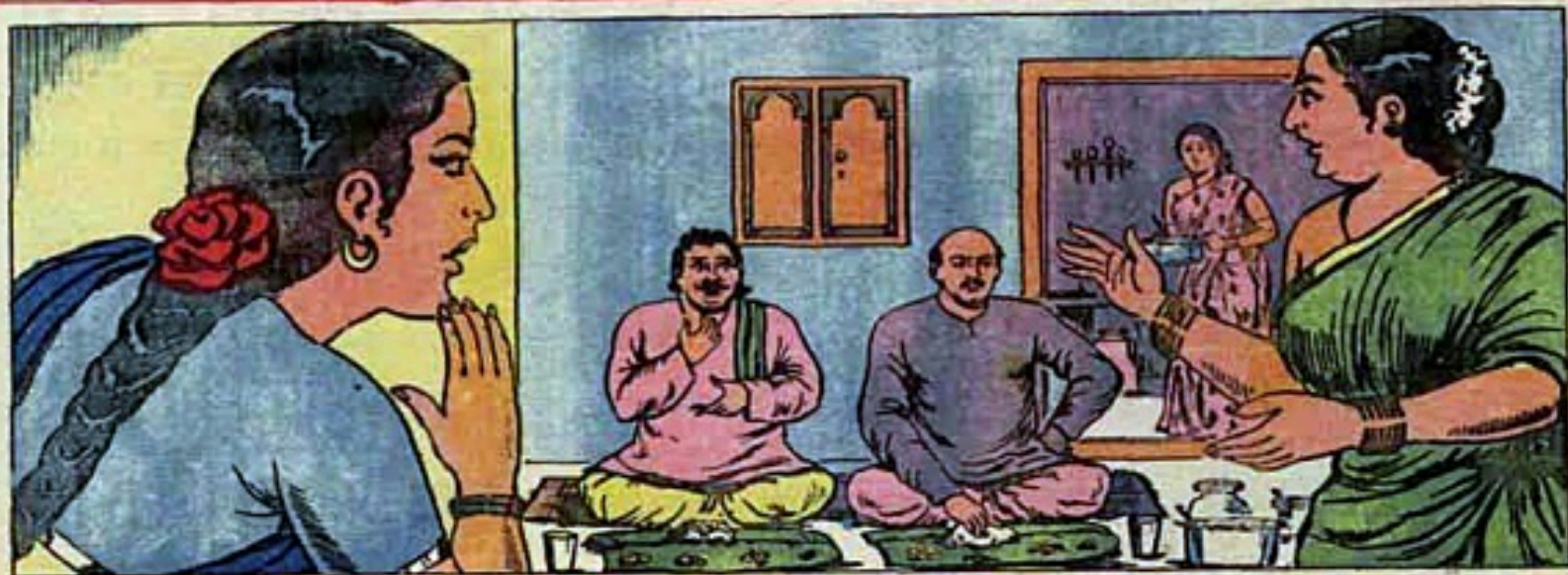
शिव पुराण

रति की प्रार्थना सुनकर शिव ने कहा, "कामदेव को ब्रह्मा का शाप था, इसीलिए वह भस्म हो गया है। उसने ब्रह्मा पर भी इसी प्रकार पुष्पबाणों का प्रहार करके उनके मन में पुत्री के प्रति मोह उत्पन्न किया था और शाप पाया था। पर मैं तुम्हारा पातिव्रत्य भंग न होने दूँगा। कामदेव भले ही जगत की दृष्टि में देहविहीन क्यों न हो गया हो, पर तुम्हें वह देह के साथ प्राप्त होगा। मैं अभी उसे जीवित किये देता हूँ।"

इसके बाद शिव अपनी तपस्या का त्याग कर कैलास में अपने रुद्रगणों के बीच विराजमान हो गये।

उन्होंने अग्नि को आदेश दिया, "तुम आज से वृक्षों, पर्वतों तथा समुद्रों में गुप्त रूप से निवास करो।"

देवगणों सहित इंद्र शिव से विदा लेकर चले गये। शिव का मन पार्वती पर केंद्रित हो गया।

उन्होंने पार्वती के साथ विवाह करने का निश्चय कर लिया।

पार्वती ने शिव के तृतीय नेत्र को खुलते तथा वन एवं कामदेव को भस्म होते प्रत्यक्ष देखा था। वह अत्यन्त भयभीत होकर अपनी सखियों के साथ दौड़ती हुई घर पहुँची। उससे सारा वृतान्त सुनकर मेनका और हिमवान ने समझ लिया कि पार्वती को नवजीवन मिला है। उन्होंने पुत्री को सांत्वना देकर उसका भय दूर किया।

पार्वती के हृदय में शिव के वियोग की पीड़ा

थी। उसके मन में केवल शिव का ही चिन्तन था। उसने निद्रा और आहार दोनों को ही तज दिया था।

पुत्री की ऐसी अवस्था देखकर माता-पिता ने उसे समझाया, "बेटी! तुम चिन्ता न करो! हम शीघ्र ही शिव के साथ तुम्हारा विवाह सम्पन्न करेंगे!"

एक दिन हिमवान के घर नारद का भी आगमन हुआ। उन्होंने भी पार्वती को आश्वासन दिया कि शिव अवश्य ही प्रसन्न होंगे और उसके साथ विवाह करेंगे।

नारद ने उसे 'शिव पंचाक्षरी' मंत्र का उपदेश भी दिया और सब कामनाओं की सिद्धि के लिए उसका जप करने को कहा। इसके उपरान्त वे मेनका एवं हिमवान से विदा लेकर चले गये।

पार्वती ने 'शिव पंचाक्षरी' मंत्र का जप आरंभ किया और निष्ठा पूर्वक शिव के ध्यान में लीन हो गयी। नारद ने पार्वती को श्रृंगतीर्थ में जप-तप करने का निर्देश दिया था। वह अपनी सखियों के साथ श्रृंगतीर्थ पहुँची और पंचाक्षरी मंत्र का जप करती हुई घोर तपस्या में निमग्न हो गयी। आहार के रूप में उसने कन्दमूल-फल ही नहीं, पत्तों तक को खाना छोड़ दिया, यह देख वहाँ के तपस्वी मुनि उसे 'अपर्णा' कहकर पुकारने लगे।

एक दिन मेनका और हिमवान पुत्री से मिलने के लिए आये। उसका दुर्बल शिथिल गात देखकर वे भयभीत हो गये और बोले, "बेटी! तुम आहार तज कर यह कठिन तप किसके लिए कर रही हो? क्या तुम्हारा यह विश्वास है कि कामदेव को भस्म करनेवाले शिव तुम्हारे ऊपर अनुग्रह करेंगे? वे वैरागी, कठोर और क्रोधी हैं। तुम उन्हें पाने का आग्रह मत करो! चलो, घर चलो!"

पार्वती ने कहा, "आप ही ने तो कहा था कि मेरा विवाह शिव के साथ करेंगे। वे निश्चय ही एक दिन आपके जामाता होंगे। आप इस की चिन्ता न कीजिए और मुझे मेरी तपस्या पूरी करने दीजिए।"

उधर शिव को यह चिन्ता थी कि पार्वती के साथ कैसे विवाह सम्पन्न हो। तभी ब्रह्मा, विष्णु और इंद्र शिव के पास पहुँचे।

शिव ने उनका स्वागत किया। तब वे बोले, "महादेव ! आप पार्वती के साथ विवाह कर जगत का कल्याण क्यों नहीं करते ? तारक ने यह वर प्राप्त किया है कि आपके पुत्र से ही उसकी मृत्यु संभव है, अन्य से नहीं। और यह सत्य है कि उसकी मृत्यु से ही जगत सुखी बन सकता है !"

सुनकर शिव मन हीं मन प्रसन्न हुए, किंतु प्रकट में बोले, "विवाह करने पर हमारी तपस्या में विघ्न होगा। काम देव के पुष्प बाणों पर विजय पाना आसान है, लेकिन स्त्रियों के नयन-बाण अत्यन्त तीक्ष्ण होते हैं, उनका सामना करना कठिन है। हमें ऐसा लगता है कि पार्वती के साथ गृहस्थ-धर्म निर्वाह करने की अपेक्षा तप करना श्रेष्ठ है।"

ब्रह्मा बोले, "महादेव ! गृहस्थाश्रम ही सर्वोत्तम है। अविवाहित व्यक्ति का कोई आदर नहीं करता। आप गृहस्थाश्रम के साथ तपस्या कर राजयोगी का जीवन बितायें। इससे समस्त लोकों का हित होगा ! आप के द्वारा यह कार्य संपन्न होना है।"

शिव ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की और सब देवों का सम्मान कर आदर पूर्वक उनको विदा किया।

पार्वती में शिव का मन रम चुका था फिर भी उन्होंने पार्वती के हृदय की थाह लेनी चाही। इसलिए वे एक वृद्ध यति का रूप धारण कर हाथ में दण्ड और कमण्डलु ले पार्वती के निकट पहुँचे।

पार्वती ने उनके मुखमंडल का तेज देखकर अनुमान लगाया कि ये यति ब्रह्मा, विष्णु या स्वयं महेश में से ही कोई एक होंगे। उसने उनकी अभ्यर्थना कर उन्हें अर्घ्य प्रदान किया और पूछा, "महात्मन्। आप कौन हैं ? क्या मैं जान सकती हूं कि मेरी तपोभूमि में आपके आगमन का क्या कारण है ?"

"मैं ब्रह्मा के वंश का हूँ। जगत के हित की कामना से सदा सर्वत्र भ्रमण किया करता हूँ। तुम किसकी पुत्री हो ? और किस लक्ष्य की सिद्धि के लिए यह तपस्या कर रही हो, इसी जिज्ञासा से मैं इधर आया हूँ।" शिव ने कहा।

"मैं मेनका तथा हिमवान की पुत्री हूँ। मेरा

लोकों को अकारण संकट में न डालो । घर लौटो और देवताओं में से किसी को अपना पति स्वीकार कर सुखपूर्वक रहो !" यति बोले ।

"आपके परामर्श के लिए धन्यवाद ! अब आप यहाँ से पधारें । मैं अपना निर्णय नहीं बदल सकती !" पार्वती ने कुछ विरक्त होकर कहा ।

"अच्छी बात है ! मैं जाता हूँ, पर जाने से पहले तुम्हारे हित की कामना से कुछ कहना चाहता हूँ। शिव दरिद्र हैं। वे रेशमी वस्त्र धारण न कर चर्म पहनते हैं । उनके पास सवारी के लिए एक बैल है, कोई उत्तम वाहन तक नहीं । भूत और पिशाच उनके सहचर हैं । शरीर पर चन्दन का लेप नहीं, श्मशान की राख होती है ! तुम्हें उनके साथ विवाह करके कोई सुख-भोग नहीं मिलेगा ।" यति वेशधारी शिव ने कहा ।

पार्वती अब अपने क्रोध पर संयम नहीं रख सकी, बोली, "तुम सच्चे नहीं, कपट यति मालूम होते हो । मैं अब तक इस भ्रम में थी कि तुम ज्ञानी हो । शिव के पास सब प्रकार के ऐश्वर्य हैं । तुम जानते हो, जो शिव की निन्दा करते हैं, वे सात जन्मों तक दारिद्र्य भोगते हैं!" इसके बाद पार्वती ने अपनी परिचारिकाओं को संकेत से आदेश दिया कि इस यति को यहाँ से विदा कर दो ।

शिव अब अपने वास्तविक रूप में आ गये और पार्वती का हाथ पकड़ हँसकर बोले,

नाम पार्वती है। जब ईश्वर कैलास में तपस्यारत थे, तब मैं उनकी परिचर्या में थी । एक दिन कामदेव ने उन पर अपने पाँचों पुष्पबाणों का प्रहार किया । सदाशिव ने अपने अग्नि-नेत्र की ज्वाला से काम को भस्म कर दिया । महर्षि नारद के मंत्रोपदेश से मै पंचाक्षरी मंत्र का जप करती हुई शिव को पति रूप में पाने के लिए यहाँ तप कर रही हूँ । मैंने कठिन तपस्या-व्रत स्वीकार किया है, फिर भी शिव का मुझ पर अनुग्रह नहीं हो रहा । अब मैं अग्नि में प्रवेश करके अपना जीवन समाप्त करना चाहती हूँ ।" पार्वती ने कहा ।

"यह तो तुम बड़ी भूल कर रही हो । ईश्वर तो वैरागी हैं, तपस्वी हैं । तुम अपनी तपस्या से

"पार्वती ! मैंने तुम्हारे मन की थाह लेने के लिए यति का वेश बनाया था । देखो, मैं शिव हूँ । तुम्हारे वियोग में मैं बड़ी पीड़ा का अनुभव करता हूँ । तुम अब विलम्ब किये बिना मेरे साथ कैलास चलो !"

पार्वती ने सामने देखा, साक्षात् शिव उस के सामने खड़े उससे प्रेम-निवेदन कर रहे हैं । उसने शिव से क्षमा माँगी और कहा, "हे देवाधिदेव ! मेरा इस तरह आपके साथ चलना उचित नहीं है । आप मेरे माता-पिता की अनुमति लेकर मुझसे विवाह कीजिए । फिर मैं आपके साथ चलूँगी !"

इसके बाद पार्वती ने शिव को प्रणाम किया और अपनी सखियों के साथ घर लौट गयी । पार्वती के मुख से सारा वृत्तान्त सुनकर मेनका और हिमवान अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने पार्वती के विवाह का शुभ लग्न निश्चित किया और विवाह की तैयारियाँ करने लगे ।

शिव ने कैलास में पहुँच कर अपने प्रमथगणों से कहा, "कामदेव ने मुझ पर पुष्पबाणों का प्रहार किया है । तब से मेरा मन पार्वती में अनुरक्त है । अभी मैं तपस्या से विरत हो गया हूँ और पार्वती के साथ विवाह करना चाहता हूँ । इस कार्य के लिए सप्त ऋषियों को दूत-कार्य करना पड़ेगा ।"

शिव की इच्छा जानकर नन्दीश्वर ने उसी समय प्रयाण किया और सप्त ऋषियों को साथ ले कैलास को लौट आया ।

महर्षियों ने शिव के दर्शन पाकर कृतार्थता अनुभव की । उन्होंने शिव से सविनय कहा, "हे महादेव ! हमारे योग्य कोई सेवा हो तो आज्ञा कीजिए ! हम बड़ी प्रसन्नता से तत्काल उसे पूरा करेंगे ।"

"महर्षियो ! मैंने पार्वती के साथ विवाह करके गृहस्थ जीवन बिताने का निश्चय किया है । इसलिए आप लोग पर्वतराज हिमवान के पास जायें और मेरे लिए उनसे पार्वती के हाथ की याचना करें । उनकी स्वीकृति मिलने पर एक शुभ लग्न शोध कर इस विवाह को सम्पन्न कराने की कृपा करें ।" शिव ने उन सातों ऋषियों से कहा ।

ऋषियों ने अत्यन्त प्रसन्नता से शिव की बात

सुनी और फिर हिमवान से मिलने के लिए चल पड़े । मेनका के साथ हिमवान ने आदरपूर्वक ऋषियों का अतिथि-सत्कार किया और पूछा, "महर्षिगण ! आप किस उच्च कार्य के हेतु से हमारे घर को पवित्र बनाने के लिए पधारे हैं ? आप हमें आज्ञा देकर कृतार्थ करें !"

ऋषिगण बोले, "आप दोनों बड़े ही भाग्यवान हैं । साक्षात् परमेश्वरी ने आपके घर पुत्री बनकर जन्म लिया । भगवान शिव आपकी पुत्री के साथ विवाह करना चाहते हैं । इस विवाह से आपका यश तीनों लोकों में फैल जायेगा । कृपया आप शिव को अपनी कन्या प्रदान करें ।"

अत्यन्त गंभीर होकर मेनका एवं हिमवान ने कहा, "ऋषिवरो ! हम तो शिव के साथ पार्वती के विवाह का संकल्प कर ही चुके थे, लेकिन कल संयोग से एक भिक्षु हमारे अतिथि हुए । उन्होंने हमें समझाया कि हम शिव के साथ पार्वती का विवाह न करें क्यों कि शिव के पास न कोई राज्य है और न सुख-भोग का कोई साधन । वे श्मशान में निवास करते हैं, सर्प धारण करते हैं । उनके यहाँ न कोई अच्छा महल और न नौकर पाकर और कोई साबुत भोजन-पात्र भी नहीं है । खप्पर में खाते हैं । उनके मुँह से यह सब सुनकर हमने अपना विचार बदल दिया है ।"

हिमवान की बातों से ऋषियों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । वे कुछ कुपित भाव से बोले, "वह भिक्षु अवश्य ही बड़ा दुष्ट होना चाहिए । उसने शिव-पार्वती के मंगल-विवाह को रोकने के ख्याल से ही आप से ऐसा कहा होगा । आप यह न भूलें कि आप की पुत्री परादेवी का अवतार है । वह शिव की पत्नी बनने के लिए ही आपकी पुत्री रूप में जन्मी है, अन्य किसी कारण से नहीं !"

इस प्रसंग में महर्षि वशिष्ठ ने मेनका तथा हिमवान को अनरण्य नाम के राजा की कहानी सुनायीः

इंद्रसावर्णि नाम के चौदहवें मनु के वंश में राजा अनरण्य ने जन्म लिया था । वे चक्रवर्ती राजा थे । उनके यहाँ रुचि नाम के एक तपस्वी पुरोहित थे ।
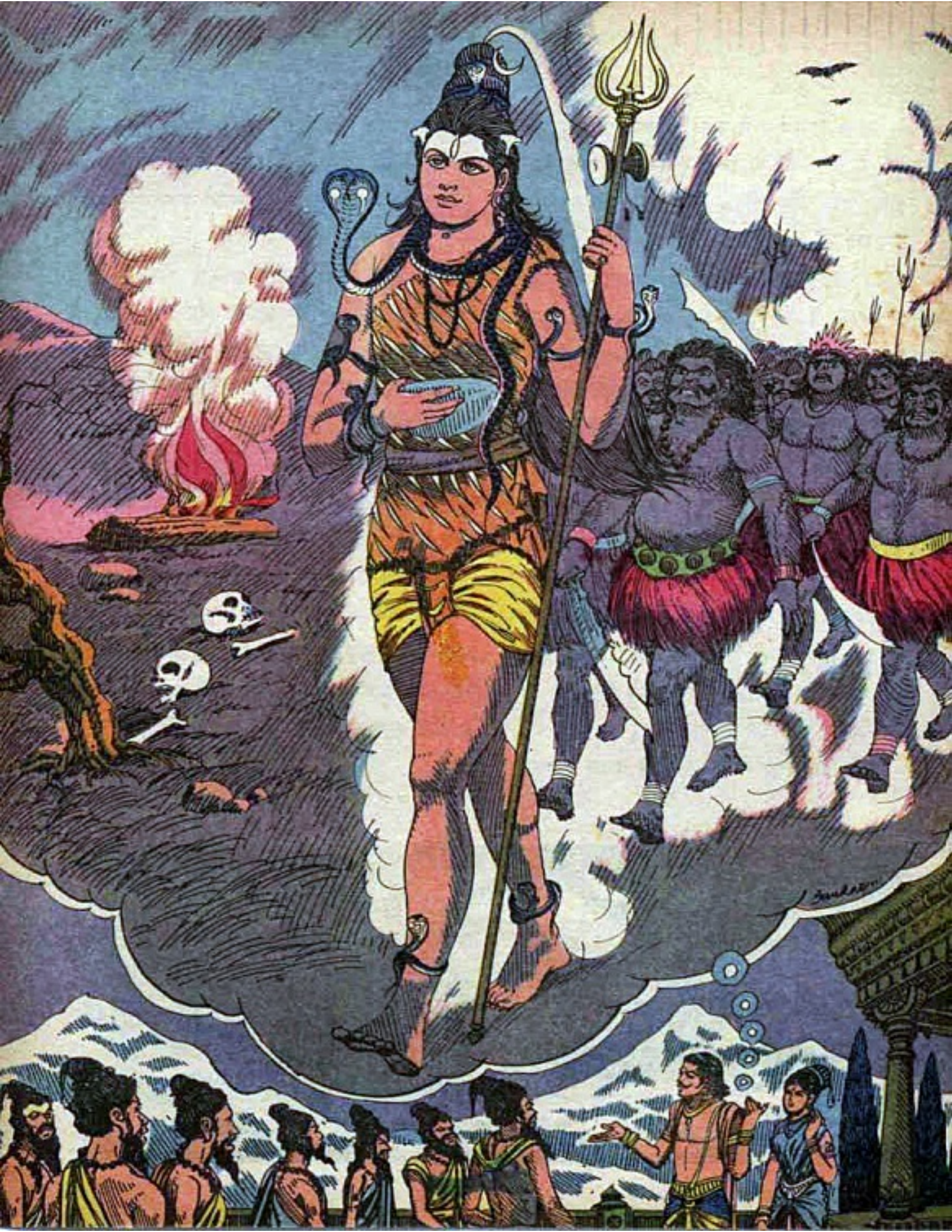
राजा अनरण्य के पाँच पत्नियाँ थीं और सौ पुत्र थे। उनकी अन्तिम सन्तान एक पुत्री थी, नाम था पद्मावती। पद्मावती असाधारण रूपवती थी। जब उसने यौवनावस्था में पदार्पण किया तो उसके विवाह के ख्याल से राजा अनरण्य ने किसी सुन्दर, तरुण और योग्य राजकुमार की खोज करना प्रारंभ किया।

एक दिन पद्मावती अपनी सखियों के साथ एक नदी में स्नान कर रही थी। तभी पिप्पलाद नाम के एक मुनि स्नान करने के लिए उसी नदी पर आये। मुनि पिप्पलाद साधारण व्यक्ति न थे। वे भृगुवंशी थे और महामुनि दधीचि के पुत्र थे।

पिप्पलाद ने पद्मावती को देखा तो वे उसके सौन्दर्य पर मुग्ध हो गये। वे महाराज अनरण्य की राज सभा में आये और उनसे पद्मावती के पाणिग्रहण की अभ्यर्थना की।

मुनि पिप्पलाद के मुख से ये वचन सुनकर राजा अनरण्य अवाक् रह गये। उनका संकल्प था कि वे अपनी रति देवी जैसी अनुपम सुन्दरी पुत्री का विवाह मन्मथ जैसे किसी राजकुमार से करेंगे। यह बूढ़ा पिप्पलाद कहाँ बीच में टपक पड़ा! अगर इससे स्पष्ट इनकार कर दें तो शायद यह मुनि रुष्ट हो जायेगा और शाप देकर पूरे कुल का ही नाश कर देगा। राजा अनरण्य की आशाओं पर पानी फिर गया। वे मन ही मन बहुत दुखी हुए! उनके दिल पर बड़ा आघात पहुँचा। उन से कुछ कहते बनता न था। वे पशोपेश में पड़ गये। ऐसी हालत में क्या किया जाय, यही विचार कर वे मौन रह गये।

महाराजा अनरण्य मूक बने बहुत देर तक संशय में डूबे रहे। राज सभा में स्तब्धता छा गई। आज तक राज सभा में ऐसा दृश्य कभी देखने को न मिला था। तब राजपुरोहितों तथा मंत्रियों ने उन्हें समझा-बुझा कर परामर्श दिया।...

(क्रमशः)

सर्वज्ञ

राजा भरतसिंह का मंत्री आदित्यशर्मन अत्यन्त मेधावी और राजतंत्र में कुशल व्यक्ति था। अब वह बूढ़ा हो चला था। उसने राजा से विश्राम की इच्छा प्रकट की। पद-त्याग के लिए तत्पर वृद्ध मंत्री से राजा ने कहा, "आप अपने स्थान पर नये मंत्री का चुनाव स्वयं ही कर दें।"

मंत्री-पद पाने के लिए कई उम्मीदवार आये। वृद्ध मंत्री ने उन की परीक्षा ली। उस परीक्षा में दो युवक सर्वश्रेष्ठ निकले। अब यह समस्या थी कि इन दोनों में से किसको मंत्री-पद दिया जाये।

मंत्री आदित्यशर्मन ने उन दोनों युवकों को अपने भवन में आमंत्रित किया। एक विशाल कक्ष में चमकीली कारीगरी का, सोने का पानी चढ़ा हुआ एक ऊँचा आसन रखा हुआ था। उसकी ओर संकेत करके मंत्री ने उन दोनों युवकों से कहा, "आप सभी परीक्षाओं में समान रूप से उत्तीर्ण हुए हैं। यह अन्तिम परीक्षा है। आपमें से जो अपने को सब कुछ का ज्ञाता अर्थात् सर्वज्ञ मानता है, वह इस ऊँचे आसन पर बैठ सकता है। मैं आप को केवल तीन क्षण की अवधि देता हूँ।"

दूसरे ही क्षण उनमें से एक युवक फुरती से उस आसन पर बैठ गया। आदित्यशर्मन ने दूसरे युवक को अपने साथ लिया और राजा भरतसिंह से जाकर कहा, "महाराज! यह युवक मंत्री-पद के योग्य है!"
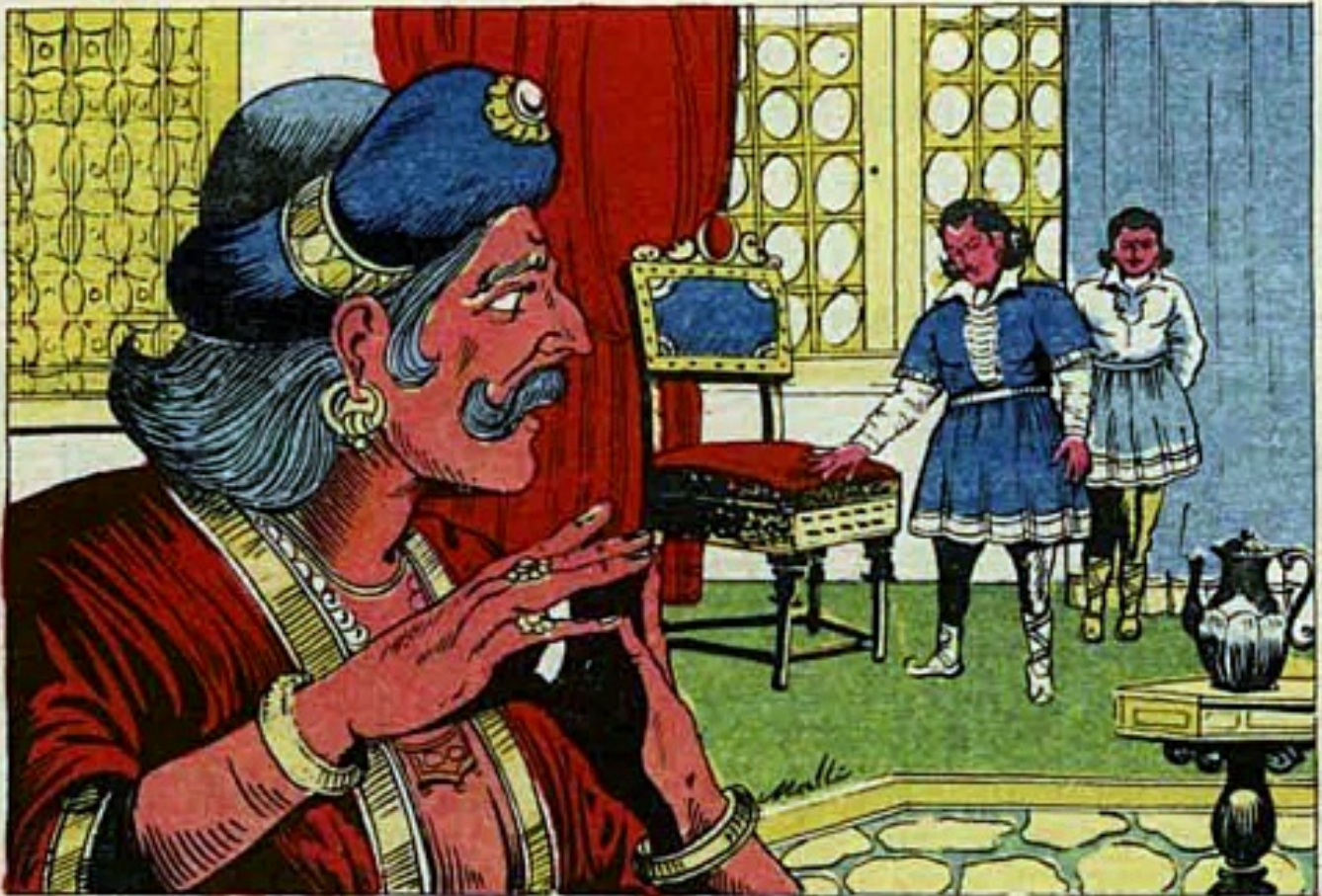
चोर और फ़कीर

इस्पहान नगर में एक व्यापारी रहता था। नाम था कमलुद्दीन। एक शाम वह दूकान बन्द करके अपने घर लौट रहा था। उसके हाथ में दिन भर हुई आमदनी के पैसों की एक थैली थी।

कमलुद्दीन कुछ दूर राजपथ पर चलता रहा, फिर एक गली में मुड़ गया। अचानक पीछे से एक युवक आया और उसके धन की थैली छीन कर भाग गया। कमलुद्दीन 'चोर! चोर!' कह कर चिल्लाने लगा। कमलुद्दीन की आवाज़ सुनकर लोग चोर के पीछे भागे और उसे घेर कर पकड़ लिया।

कमलुद्दीन को अपने धन की थैली वापस मिल गयी। लेकिन चोर को जिन लोगों ने पकड़ा था, वे उसे कोतवाल के पास खींच ले गये।

कोतवाल अव्वल दर्जे का गुस्सैल आदमी था। चोर कोतवाल के पैरों पर गिर पड़ा और माफ़ी माँगने लगा, लेकिन कोतवाल ने खींच कर उसके लात मार दी और चीख कर बोला, "अरे! मेरे कोतवाल रहते हुए तेरी इतनी हिम्मत!"

धक्का खाकर उस युवक ने दो-तीन कलाँबाज़ी लीं और उछल कर गली में दूर जा गिरा। लेकिन दूसरे ही क्षण वह गेंद की तरह उछला और भागने लगा। उसे पकड़ने के लिए कुछ सिपाही उसके पीछे भागे, फिर भी वह सिपाहियों की आँखों में धूल झोंककर नगर की सीमा पार कर गया।

सिपाही अब भी उसका पीछा कर रहे थे। चोर थक गया था। जंगल और पहाड़ी इलाका शुरू हो गया था। वहीं उसने देखा, रास्ते के किनारे पर एक पहाड़ी गुफ़ा है और उसमें एक दिया जल रहा है। चोर झटपट उस गुफ़ा में घुस गया।

दरअसल वह एक फ़कीर की गुफ़ा थी।

'अरब की रातों' से एक कहानी

उस वक्त फ़कीर वहां नहीं था। चोर वहाँ पड़ी एक चादर उठायी और ओढ़कर ध्यानमग्न होने का स्वांग रच बैठ गया।

थोड़ी देर बाद वे सिपाही भी वहाँ आये और गुफ़ा में झाँक कर फ़कीर के रूप में बैठे हुए चोर से बोले, "महात्मा जी! क्या आपने इस तरफ़ भाग कर आते हुए किसी आदमी को देखा है?"

"हमने नहीं देखा!" साधु बने बैठे चोर ने गंभीर स्वर में कुछ लापरवाही से उत्तर दिया।

"आप हमें क्षमा करें! हमने आप की प्रार्थना में विघ्न डाला।" कह कर उन्होंने चोर को अपना मस्तक झुकाकर प्रणाम किया और चले गये।

अब चोर का डर जाता रहा। उसका मन स्थिर हो गया। सिपाहियों ने उसे प्रणाम किया, यह सोचकर उसे हँसी आ गयी। लेकिन, दूसरे ही क्षण उसके मन में यह विचार पैदा हुआ, "मैंने फ़कीर का स्वांग रचा, इस कारण मैं ख़तरे से बच गया। इतना ही नहीं, उन लोगों ने मेरे प्रति आदर भी प्रदर्शित किया। अगर मैं सच्चा फ़कीर बन जाऊँ तो न जाने मुझे कितना आदर प्राप्त होगा! इसलिए मुझेफ़कीर बन जाना चाहिए।"

चोर इस प्रकार सोच ही रहा था कि गुफ़ा में निवास करनेवाला फ़कीर लौट आया। चोर फ़कीर को देखते ही डर गया, फिर उसके पैरों पर गिर पड़ा और गिड़गिड़ाकर बोला, "महात्मा मुझे यहाँ रह कर अपनी सेवा करने की अनुमति दीजिए!"

दयालु फ़कीर ने उसकी प्रार्थना मान ली और उसे अपना शिष्य बना लिया।

उस दिन से चोर फ़कीर की सेवा-शुश्रूषा करता और उनसे धर्मोपदेश सुनता।

धीरे-धीरे उसका हृदय परिवर्तित हुआ। वह एक धार्मिक और सज्जन मनुष्य बन गया।

कुछ साल बीत गये। फ़कीर का देहावसान हो गया। चोर ने उसी गुफ़ा में रहते हुए फ़कीर की जगह एक धर्मोपदेशक के रूप में यश प्राप्त किया।

एक दिन चोर से उसके एक भक्त ने नगर में चलने का आग्रह किया। चोर ने स्वीकार कर

लिया। नागरिकों ने उसका अच्छा स्वागत किया और धर्म के बारे में अपनी शंकाएँ उसके सामने रखीं ।

चोर ने अपने तर्कसंगत जवाबों से उनकी शंकाओं का निवारण किया ।

तभी एक बूढ़ा भीड़ में से उठा और उसने चोर के समीप आकर श्रद्धापूर्वक उसके चरण छुए। फिर भक्तिभाव से हाथ जोड़कर बोला, "महात्मा ! अगर मुझ जैसे व्यक्ति को खुदा का सान्निध्य प्राप्त करना है, तो कोई चमत्कार ही घटित होना चाहिए। इसका कारण यह है कि मैंने अपना सारा जीवन आपकी तरह न बिताकर अन्य मार्ग पर चलते हुए बिताया है। मैं कई बरसों तक इस नगर का कोतवाल रह चुका हूँ।"

"वत्स ! तुम यह शंका क्यों करते हो कि ऐसा चमत्कार घटित नहीं हो सकता। एक समय था जब मैंने तुम्हारे पैर पकड़े थे, लेकिन उस समय तुमने क्रोध में आकर मुझे लात मार दी थी। आज भी एक समय है, जब तुमने बड़ी श्रद्धापूर्वक मेरे चरणों का स्पर्श किया है। यह चमत्कार नहीं तो और क्या है ? एक ज़माने का चोर जब खुदा की करुणा का पात्र हो सकता है, तो चोरों को पकड़ कर उन्हें सज़ा देनेवाला व्यक्ति उनकी करुणा का पात्र क्यों नहीं हो सकता ?" यह कह कर चोर मन्दहास कर उठा ।

बूढ़ा उसकी बात को समझ नहीं पाया और जिज्ञासा से उसकी तरफ़ आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगा। चोर ने अनेक बरस पहले हुई उस घटना को विस्तारपूर्वक बताकर अपनी बात स्पष्ट की ।

अब बूढ़े का समाधान हो गया और उसने अत्यन्त आनन्दित होकर फ़कीर के चरण पकड़ लिये । उसके आँसुओं से चोर के पैर भींग गये ।

चार पैरोंवाली मछलियाँ

१७४१ में 'सेंट पीटर' नाम का एक रूसी जहाज़ बेरिंग द्वीप के तट पर नष्ट हो गया। उस जहाज़ के कुछ यात्री अपने प्राण बचाकर तैरते हुए किनारे पर आये। तैरने के दौरान उन्होंने 'सी आटर्स' नाम के एक स्तन्यधारी जलचर को हज़ारों की संख्या में देखा। रूसी यात्री जितने दिन उस द्वीप में रहे, अपने आहार के लिए तथा खेमे बनाने के लिए उन जलचरों का शिकार करते रहे। वे वहाँ से उनकी चर्म ले गये और उन्हें अच्छे मूल्यों पर बेच दिया। तब से समुद्रों पर आटर्स का शिकार बढ़ता गया। धीरे-धीरे एक समय ऐसा आया कि प्रशान्त महासागर के तट पर बहुतायत में दिखाई देने वाले ये जलचर लुप्त होने लगे। १९१० में अमरीका ने तथा १९१५ में कुछ और देशों ने इन जलचरों की जाति की रक्षा करने के लिए इनके शिकार पर प्रतिबन्ध लगाते हुए कानून बनाये।

समुद्र की काई जहाँ मोटी और घनी होती है और पानी उथला होता है, वहाँ ये 'सी आटर्स' नाम के जलचर दल बनाकर रहते हैं। 'सी आटर्स' की लंबाई एक मीटर और उसकी पूँछ तीन चौथाई मीटर होती है। इसका सिर बड़ा और गरदन छोटी होती है। इसकी आँखें छोटी और कान भी छोटे होते हैं। मूँछें झबरी होती हैं। इसके अगले पैर पीछे के पैरों से छोटे होते हैं। इसकी उंगलियों को जोड़ने के लिए बीच में चर्म होती है। ये जलचर अपने को पानी के बहाव से बचाने के लिए समुद्र की काई को लपेट कर, पानी पर औंधे मुँह लेटे, दल बांध कर सो जाते हैं। उस समय इनमें से एक पहरा देता है। जैसे ही ये नींद से उठते हैं, पानी में डुबकी मारकर केकड़े तथा कौड़ी वाली मछलियों को पकड़ कर खाते हैं। ये जलचर कौड़ीवाली मछलियों के ऊपर की कौड़ी को फोड़ने के लिए समुद्र से पत्थर ले आते हैं और अपने नीचे के पैरों से पत्थर पकड़कर हाथों से उस पर कौड़ी फोड़कर तब मछली खाते हैं। दो वर्ष में एक बार ये बच्चे देते हैं पर बच्चे देने के लिए ये ज़मीन पर आ जाते हैं।

सह-अस्तित्व जीवन के ये अभ्यासी होते हैं। कुछ बातों में इनका व्यवहार मनुष्यों जैसा होता है।
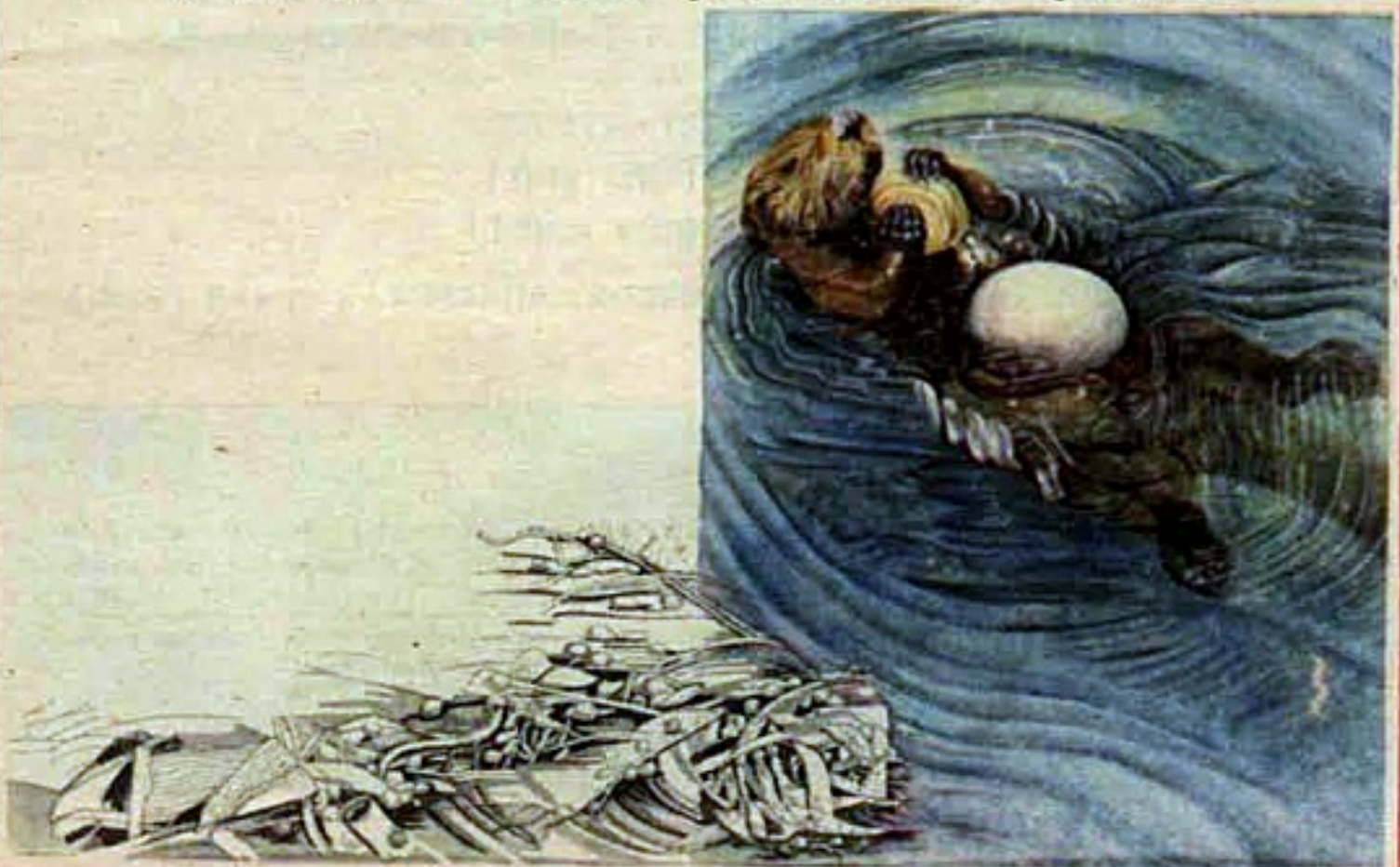
फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार ५०)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ अगस्त १९८५ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी ।

Varadaraya Nayak

Srivatsa S. Vati

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ एक शब्द या छोटे वाक्य में हों। ★ जून १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए। ★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) ५० रु. का पुरस्कार दिया जाएगा। ★ दोनों परिचयोक्तियाँ केवल कार्ड पर लिखकर निम्न पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

अप्रैल के फोटो - परिणाम

प्रथम फोटो : निर्जीव हाथी !

द्वितीय फोटो : सजीव साथी !!

प्रेषक : राजीव वर्मा, ३०१, न्यू विजय नगर, सेक्टर-९, गाजियाबाद - २०१००१ (उ. प्र.)

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 188, Arcot Road, Madras-600 026 (India). Controlling Editor: NAGI REDDI.

कमाल का मज़ा...गोल्ड स्पॉट का मज़ा

मुड़-मुड़ के देखे संसार
सुपर रिन की चमकार!
सुपर
रिन
सुपर रिन की चमकार ज़्यादा सफ़ेद
किसी भी अन्य डिटर्जेंट टिकिया या बार से ज़्यादा सफ़ेद
हिन्दुस्तान लीवर का एक उत्कृष्ट उत्पादन

माल्टोवा टोली अचानक खुशी से भर दें झोली

उस दिन मिश्री का जन्म दिन था। पूरी टोली उसके गार्डेन में जमी थी। साथ में था बचा हुआ चॉकलेट केक और हाथ में माल्टोवा का कप। क्या ही शानदार पार्टी हुई थी, लेकिन जिस नन्ही गुड़िया का जन्म दिन मनाया गया वही खामोश बैठी थी।

"क्या बात है मिश्री"?

"डब्बू, तुम्हे धीरू याद है न, अनाथाश्रम वाला, जो कल मेरी पार्टी में आया था! अनाथाश्रम मे किसी का जन्म दिन नहीं मनाते और अगले शनिवार को धीरू का जन्म दिन है" मिश्री की आँखों से आंसू टपक पड़े।

सलीम को एक बात सूझी

सलीम ने सुझाव दिया कि धीरू के लिए चुपचाप पार्टी का आयोजन कर उसे यह खुशी अचानक दी जाए! सबको बात बेहद पसंद आयी। डब्बू और मालती ने अपने पाकेट खर्च के पैसे दिये। बेनू की मां ने केक बना दिया और मिश्री ने अपने ही प्रेज़ेन्ट्स में से कुछ दे दिए।

धीरू को मिली अचानक खुशी

शनिवार के दिन धीरू को सलीम के घर आमंत्रित किया गया। उसे किसी ने भी जन्म दिन की शुभकामना नहीं दी थी इसलिए वह उदास था। दरवाजा खुला मिला तो धीरू ने जिज्ञासा की "हॅलो, कहां है सबलोग?" अचानक बत्तियाँ जली और धीरू ने देखा सभी वहीं है– अनाथाश्रम की उसकी मित्र मंडली और पूरी माल्टोवा टोली। सभी धीरू के लिए "हॅप्पी बर्थ डे" गा रहे थे।

पार्टी शानदार रही। एक बड़ा, गुलाबी और सफेद केक, सजीले गुब्बारे, विविध खेल, कई उपहार और गरमागरम माल्टोवा के कप, सब शामिल थे। इधर धीरू की भीगी आंखों में थी खुशी की चमक और होटों पर शायद पहली बार, मुस्कान की दमक।

माल्टोवा का असर
सबसे अलग, सबसे बढ़कर

सचमुच माल्टोवा वाले बच्चे जिन्दगी का पूरा आनंद उठाते हैं क्योंकि माल्टोवा में है उत्तम गेहूँ, जौ, दूध, कोकोआ और चीनी की सम्मिलित पौष्टिकता जो उन्हें देती है बेहतर प्रतिरोध क्षमता, अधिक शक्ति और अधिकतम सामर्थ्य। माल्टोवा आपके बच्चों के जीवन में अपार उत्साह भरता है।

माल्टोवा क्लब का सदस्य बनिये।

बहुत आसान है। बस ५०० ग्राम वाले जार के तीन लेबल और भीतरी सील या ५०० ग्राम वाले रीफिल पैक के तीन टॉप फ्लैप निम्नांकित पते पर भेज दीजिए:

दि माल्टोवा क्लब
४थी मंजिल, भण्डारी हाउस
९१, नेहरू प्लेस,
नई दिल्ली ११००१९

और समझिए शामिल हो गए।

JIL जगतजीत इंडस्ट्रीज लिमिटेड

विटामिन से भरपूर माल्टोवा: स्वास्थ्य, शक्ति और स्फूर्ति के लिए

SIMOES/JIL/002/85 HIN

CHANDAMAMA *[Hindi]* JUNE 1985 Regd. No. M. 5452